चतुर्दशोऽध्यायः

ऋषिः—उशनाः। देवता—अश्विनौ। छन्दः—त्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

ध्रुव

ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥१॥

१. तेरहवें अध्याय की समाप्ति पर पति पत्नी से कह रहा था कि हम 'प्राण, मन, चक्षु, श्रोत्र व वाणी' का निरोध करके उत्तम सन्तानों को प्राप्त करें। उसी प्रकरण को आगे चलाते हुए कहते हैं कि हे पत्नि! २. **ध्रुवक्षितिः**=(क्षिति=मनुष्य) ध्रुव मनुष्यवाली तू हो, अर्थात् तेरा पति ध्रुवता से चलनेवाला हो, मर्यादित जीवनवाला हो। ३. **ध्रुवयोनिः**=(योनिः गृहम्) तू ध्रुव गृहवाली हो। जिस घर से तू आयी है उस घर के लोग भी ध्रुवतावाले हों, अर्थात् तेरे माता-पिता का जीवन भी मर्यादावाला हो। ४. परिणामतः **ध्रुवा असि**=तू स्वयं भी ध्रुव हो। पति का जीवन मर्यादित होने पर ही पत्नी का जीवन मर्यादित हो सकता है, उसे बीज में भी अमर्यादा न मिली हो, इसी से मन्त्र में माता-पिता के भी मर्यादित जीवन का उल्लेख है। बीज में भी मर्यादा हो, परिस्थिति में भी। ५. इस प्रकार **साधुया**=बड़ी उत्तमता से तू **ध्रुवं योनिम् आसीद**=इस मर्यादा-सम्पन्न घर में निवास करनेवाली हो, अर्थात् स्वयं ध्रुव बनकर अपने घर को भी ध्रुव ही बनाना। तेरी सब सन्तानें ध्रुव जीवनवाली हों। ६. इस सबके साथ **प्रथमम्**=मुख्य बात यह है कि (The first and foremost thing is this) **उख्यस्य**=(उखा=स्थाली=पतीली) उखा के, पाचन-पात्र के **केतुम्**=अन्न को **जुषाणा**=तू प्रीतिपूर्वक सेवन करनेवाली हो। घर के सभी व्यक्तियों का स्वास्थ्य भोजन के पाचन पर ही निर्भर करता है। पत्नी ने बड़े प्रेम से भोजन तैयार करना है। प्रेम से बनाया गया भोजन ही स्वास्थ्य का साधक होता है। ७. **इह**=इस गृहस्थाश्रम में **अविश्नौ**=स्वयं कर्मों में व्याप्त होनेवाले **अध्वर्यू**=यज्ञ से अपना सम्बन्ध रखनेवाले माता-पिता **त्वा**=तुझे **सादयताम्**=बिठाएँ। माता-पिता का जीवन क्रियामय—यज्ञिय होगा तभी तो कन्या में भी वही वृत्ति उत्पन्न हो पाएगी।

भावार्थ—पति ध्रुव हो, कन्या के माता-पिता ध्रुव हों, पत्नी स्वयं भी ध्रुव हो। वह पाचन-कुशल हो। क्रियाशील—यज्ञशील माता-पिता उसे घर के निर्माण के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश कराएँ।

ऋषिः—उशनाः। देवता—अश्विनौ। छन्दः—निचृद्ब्राह्मीबृहती। स्वरः—मध्यमः॥

कुलायिनी

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः। अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥२॥

१. **कुलायिनी**=(कुलायो नीडम्=गृहम्) तू उत्तम गृहवाली हो। पत्नी ने ही घर को बनाना है—जैसा वह चाहेगी वैसा ही घर वह बना लेगी। ताण्ड्य ब्राह्मण में 'प्रजा' वै 'कुलायम्' (१९।१५।१) सन्तान को कुलाय कहा है—इससे ही कुल आगे बढ़ता है

(कुलम्=प्रयते अनेन) अतः तू **कुलायिनी**=उत्तम प्रजावाली हो। सन्तान के उत्तम होने पर ही घर उत्तम बना रहता है। २. **घृतवती**=तू मलों के क्षरण के द्वारा (घृ=क्षरण) उत्तम स्वास्थ्यवाली तथा ज्ञान की दीप्तिवाली (घृ=दीप्ति) हो। शरीर में स्वास्थ्य की दीप्ति हो तो मस्तिष्क में ज्ञान की। ३. **पुरन्धिः**=(रूपिणी युवतिः—श० १३।१।९।६) स्वास्थ्य व ज्ञान को प्राप्त करके तू उत्तम रूपवाली हो। (पुरूणि बहूनि सुखानि दधाति—द०) तू बहुत सुखों को धारण करनेवाली बन। अथवा 'पृ पालनपूरणयोः' पालक व पूरक बुद्धि का धारण करनेवाली तू हो, तुझे घर के पालन व पूरण का ध्यान हो। ४. **पृथिव्याः**=(प्रथ विस्तारे) विस्तृत हृदयवाली श्वश्रू के **स्योने**=सुखमय **सदने**=घर में **सीद**=तू बैठ। तेरी सास उदार हृदयवाली हो, छोटी-छोटी बातों में व्यर्थ क्रोध करनेवाली न हो। वास्तव में तो अब तक उसने इस घर का निर्माण किया था अब तू घर की साम्राज्ञी बन (साम्राज्ञी श्वश्र्वां०)। ५. **त्वा**=तुझे **वसवः**=प्रारम्भिक शिक्षणालय के अध्यापक 'उत्तम निवास' की विद्या को **गृणन्तु**=उपदिष्ट करें तथा **रुद्राः**=उच्च विद्यालय के अध्यापक **त्वा अभिगृणन्तु**=तुझे बाह्य व अन्तः शत्रुओं को रुलाने का उपदेश करें। तुझे वसु प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कराएँ तो रुद्र विद्यालय की उच्च शिक्षा देनेवाले हों। इसके बाद महाविद्यालय में प्राप्त होनेवाली विशेष-शिक्षा सद्गृहिणी बनने के लिए उतनी उपयुक्त नहीं, अतः मन्त्र में यहाँ 'आदित्यों' का उल्लेख छोड़ दिया है। ६. **इमा ब्रह्म**=इन ज्ञानों को तू **सौभगाय**=सौन्दर्य के लिए, घर के प्रत्येक कार्य को समझदारी से करने के लिए **पीपिहि**=(प्राप्नुहि) प्राप्त हो। **अश्विना**=कार्यों में व्याप्त होनेवाले प्राणापानशक्ति-सम्पन्न **अध्वर्यू**=यज्ञशील माता-पिता **त्वा**=तुझे **इह**=इस गृहस्थयज्ञ में **सादयताम्**=स्थापित करें।

भावार्थ—पत्नी का मौलिक कर्त्तव्य यह है कि वह घर को उत्तम बनाये, स्वयं स्वस्थ व ज्ञान की दीप्तिवाली हो। घर के पालन व पूरण का ध्यान करे। प्राथमिक व विद्यालय की उच्च शिक्षा प्राप्त करके वह अन्तः व बाह्य शत्रुओं को दूर कर सके। ज्ञानपूर्वक कार्य करनेवाली हो, जिससे उसके प्रत्येक कार्य में सौन्दर्य हो।

ऋषिः—उशनाः। **देवता**—अश्विनौ। **छन्दः**—विराड्ब्राह्मीबृहती। **स्वरः**—मध्यमः॥

यक्ष-पिता

स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाꣳसुम्ने बृहते रणाय। पितेवैधि सूनवऽआ सुशेवा स्वावेशा तन्वा संविशस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥३॥

१. **दक्षपिता**=(दक्षं वीर्यं पाति, वीर्यस्य पालयित्री—म०) अपने वीर्य=प्राणशक्ति की रक्षा करनेवाली तू **स्वैः दक्षैः**=(दक्षं वीर्यं बलम्) अपने बलों के साथ **इह**=इस गृहस्थ में **सीद**=स्थित हो, अर्थात् इस गृहस्थ में तू अपनी प्राणशक्ति की रक्षा का पूरा ध्यान करनेवाली बन। **देवानां सुम्ने**=तू सब देवों अर्थात् इन्द्रियों के सुख में स्थित हो। प्राणशक्ति की रक्षा से सब इन्द्रियों का सुख सम्भव क्यों न होगा? इन सब इन्द्रियों में प्राणशक्ति ही तो कार्य करती है। ३. इस प्राणशक्ति की रक्षा से तू **बृहते रणाय**=महती रमणीयता के लिए हो। वीर्य की रक्षा होने पर तेरा सारा शरीर सुन्दर बना रहेगा। ४. **इव**=जैसे पिता **सूनवे**=पुत्र के लिए सुख देनेवाला होता है, उसी प्रकार तू सारे घर के लिए **आ**=समन्तात् **सुशेवा**=उत्तम कल्याण के लिए हो। तू सबको सुख देनेवाली हो। ५. **स्वावेशा**=(सु=आविश) सर्वथा उत्तमता से घर में प्रवेश करनेवाली तू **तन्वा**=शक्तियों के विस्तार के साथ (तन् विस्तारे) **संविशस्व**=सम्यक्तया स्थित हो, (अवस्थानं कुरु—म०)। ६. **अश्विनौ**=स्वयं कार्यों में व्याप्त होनेवाले

अध्वर्यू=यज्ञ का सञ्चालन करनेवाले माता-पिता **त्वा**=तुझे **इह**=इस गृहस्थ में **सादयताम्**=बिठाएँ। उनसे उत्तम संस्कारों को लेकर तू भी इस घर को उत्तम बनानेवाली हो।

भावार्थ—पत्नी शक्ति की रक्षा करनेवाली हो, जिससे उसकी सब इन्द्रियाँ उत्तम हों और उसके अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रमणीयता हो। घर में सभी के सुख का वह ध्यान करें, उसकी प्रत्येक क्रिया उत्तम हो। वह अपनी शक्तियों का ह्रास न होने दे।

ऋषिः—उशनाः। **देवता**—अश्विनौ। **छन्दः**—भुरिग्ब्राह्मीबृहती। **स्वरः**—मध्यमः॥

स्तोमपृष्ठा (वीर-जननी)

पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वेऽअभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्वाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥४॥

१. तू **पृथिव्याः**=विस्तृत हृदयान्तरिक्षवाली अपनी सास का **पुरीषम्**=पालन करनेवाली **असि**=है। 'उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे' इस बात का ध्यान करनेवाली है। २. **अप्सः नाम**=(रसो नाम, अपः सनोति इति अप्सः, अपां हि रसो गुणः—म०) तू रसमय होने के नाते प्रसिद्ध है। तेरे व्यवहार में कटुता न होकर रस-ही-रस है। (अप्स इति रूपनाम—नि० ३।७) वस्तुतः इस रसमयता के कारण तेरा रूप उत्तम है। ३. तेरे व्यवहार से प्रसन्न होकर घर में रहनेवाले **विश्वेदेवाः**=सब देव—जिनमें कई अभी खेल ही रहे हैं (क्रीडन्ति), कई विद्यालय में प्रविष्ट होकर एक-दूसरे के जीतने में लगे हैं (विजिगीषा), दीक्षान्त को प्राप्त कर कई व्यवहार-क्षेत्र में प्रवेश कर गये हैं (व्यवहार), कई ज्ञान-ज्योति से द्योतित हो रहे हैं (द्युति), कई अत्यन्त वृद्ध होने से स्तुतिमात्र में लगे हैं (स्तुति), कुछ नौ-दस वर्ष की कन्याएँ खूब प्रसन्न हैं (मोद), दूसरी अठारह साल की युवतियाँ माद्यन्ती अवस्था में हैं (मद), कई विवाहित होकर नवजात सोते शिशु को गोद में लिये हैं (स्वप्न), कई पन्द्रह-सोलह साल की कन्याएँ घर के लिए नाना वस्तुओं की इच्छा कर रही हैं (कान्ति) और कई केवल चहल-पहल में ही हैं (गति), ये सब-के-सब **तां त्वा**=उस तेरी **अभिगृणन्तु**=सामने व पीछे प्रशंसा ही करें। ४. **स्तोमपृष्ठा**=(वीरजननं वै स्तोमः—तां० २१।९।३) वीरजननरूप बोझ को तू अपनी पीठ पर लिये हुए है। वीर सन्तानों को जन्म देना ही तेरा मौलिक उत्तरदायित्व है। ५. **घृतवती**=मलक्षरण से स्वास्थ्य तथा ज्ञान की दीप्तिवाली तू **इह**=इस घर में **सीद**=आसीन हो, और ६. **अस्मे**=हमारे लिए **प्रजावत् द्रविणम्**=उत्तम सन्तानवाले धन को **यजस्व**=हमारे साथ सङ्गत कर। हमें उत्तम सन्तान प्राप्त करा तथा मितव्ययिता से हमारे ऐश्वर्य को बढ़ानेवाली बन। ७. **अश्विनौ**=कर्मों में व्याप्त होनेवाले **अध्वर्यू**=यज्ञात्मक जीवनवाले माता-पिता **त्वा**=तुझे **इह**=यहाँ इस प्रकार के सुन्दर गृहस्थाश्रम में **सादयताम्**=बिठाएँ।

भावार्थ—पत्नी सास के सुख का ध्यान करे। उसकी वाणी में रस हो। घर के सब व्यक्ति उसकी प्रशंसा करें। यह वीर सन्तानों को जन्म दे। स्वस्थ व ज्ञान-दीप्त हो। घर में उत्तम सन्तानों व ऐश्वर्यों को लानेवाली हो।

ऋषिः—उशनाः। **देवता**—अश्विनौ। **छन्दः**—भुरिक्शक्वरी। **स्वरः**—धैवतः॥

अपाम् ऊर्मिः

अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं दिशामधिपत्नीं भुवनानाम्। ऊर्मिर्द्रप्सोऽअपामसि विश्वकर्मा तऽऋषिरश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥५॥

१. **त्वा**=तुझे **अदित्याः पृष्ठे**=अखण्डता के पृष्ठ पर **सादयामि**=बिठाता हूँ, अर्थात् पूर्ण स्वास्थ्यवाली बनाता हूँ। तेरे स्वास्थ्य का खण्डन नहीं होता। २. **अन्तरिक्षस्य धर्त्रीम्**=तुझे अन्तरिक्ष का धारण करनेवाली बनाता हूँ। 'अन्तरा क्षि' तू सदा मध्यमार्ग पर चलनेवाली है। तू सदा अति को छोड़कर ही चलती है। ३. **दिशां विष्टम्भनीम्**=तू दिशाओं को थामनेवाली है। वेद में दिये गये जीवन निर्देशों को धारण करनेवाली है। ४. **भुवनानाम्**=लोकों की **अधिपत्नीम्**=तू अधिष्ठातृरूपेण रक्षिका है। इस शरीररूप पृथिवीलोक को, हृदयरूप अन्तरिक्षलोक को तथा मस्तिष्करूप द्युलोक को तू अधिष्ठात्री बनकर सुरक्षित रखती है। ५. **अपाम्**=तू प्राणशक्ति व कर्मों की **ऊर्मिः**=तरङ्ग है। तेरे जीवन में कर्मों का उत्साह है और प्राणशक्ति तुझमें तरङ्गित होती है, अतएव **द्रप्सः**=(दृप् हर्ष) तू हर्ष व आनन्द का पुञ्ज **असि**=है। तेरा जीवन नितान्त आनन्दमय व रसमय है। ६. वस्तुतः वह **विश्वकर्मा**=सम्पूर्ण कर्मों का करनेवाला प्रभु ही **ते**=तेरा **ऋषिः**=द्रष्टा है। उल्लिखित सुन्दर जीवन के कारण तू प्रभु की रक्षा का पात्र हुई है। ७. **अश्विनौ**=कर्म व्याप्तिवाले **अध्वर्यू**=यज्ञमय जीवनवाले माता-पिता तुझे **इह**=यहाँ **सादयताम्**=बिठाएँ, तुझे गृहस्थ में प्रविष्ट करानेवाले हों।

भावार्थ—पत्नी का जीवन स्वास्थ्य-सम्पन्न हो। यह मध्यमार्ग में चलनेवाली हो, वेद के आदेशों को ग्रहण करनेवाली, शरीर, हृदय व मस्तिष्करूप लोकों को धारण करनेवाली, कर्मों में उत्साह के कारण आनन्दमय जीवनवाली हो। प्रभु का इसपर अनुग्रह हो।

ऋषिः—उशनाः। **देवता**—ग्रीष्मर्तुः। **छन्दः**—निचृदुत्कृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

शुक्र+शुचि=ग्रीष्म

शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। ग्रैष्मावृतूऽअभिकल्पमानाऽ इन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥६॥

१. पुरोहित वर-वधू को संकेत करता है कि—वर **शुक्रः**=(शुक गतौ) सदा क्रियाशील हो। पुरुषार्थ से धन कमानेवाला हो। उद्योग न करनेवाले गृहस्थ को तो समुद्र में डुबा देना चाहिए। २. पत्नी की ओर देखकर कहता है कि—**शुचिः**=वह बड़े पवित्र जीवनवाली हो। पति क्रियाशील है, पत्नी पवित्र जीवनवाली है तो वह घर स्वर्ग क्यों न बनेगा? यहाँ 'च' का प्रयोग अपि='भी' के अर्थ में आकर यह भाव प्रकट करता है कि पति गतिशील भी हो, अर्थात् पवित्र तो हो ही, गतिशील भी। इसी प्रकार पत्नी क्रियाशील तो हो ही, पवित्र भी। इस प्रकार दोनों में दोनों ही गुण अभीष्ट हैं। ३. क्रियाशीलता व पवित्रतावाले ये दोनों **ग्रैष्मौ**=ग्रीष्म के सन्तान हैं, इनमें प्राणशक्ति की गरमी है। ये उष्णिक-उद्योगी हैं। **ऋतू**=ये ऋतुओं के समान व्यवस्थित गतिवाले हैं, सब कार्यों को समय पर करनेवाले हैं। ५. इनमें से एक-एक **अग्नेः**=उस अग्नि नामक प्रभु को **अन्तःश्लेषः**=हृदय के अन्दर आलिङ्गन करनेवाला **असि**=है। ये हृदय में प्रभु का ध्यान करनेवाले हैं। ६. इस प्रकार इनके **द्यावापृथिवी**=मस्तिष्क व शरीर दोनों **कल्पेताम्**=शक्तिशाली हों (कृपू सामर्थ्ये)। ७. इनके लिए **आपः ओषधयः**=जल व ओषधियाँ **कल्पन्ताम्**=शक्ति देनेवाली हों। ये पानी पीएँ, वनस्पति खाएँ और अपने को सबल बनाएँ। ८. पति-पत्नी चाहते हैं कि **मम**=मेरे **ज्येष्ठ्याय**=ज्येष्ठतारूप=श्रेष्ठ कर्म के सम्पादन के लिए **सव्रताः**=समान व्रतवाले होकर, अर्थात् मेरी ज्येष्ठता को ही अपना

लक्ष्य बनाकर **अग्नयः**=दक्षिणाग्निरूप माता, गार्हपत्याग्निरूप पिता तथा आहवनीयाग्निरूप आचार्य **पृथक्**=अलग-अलग—पाँच वर्ष तक माता, आठ वर्ष तक पिता तथा चौबीस वर्ष तक आचार्य **कल्पन्ताम्**=समर्थ हों। ये सब मिलकर हमें ज्येष्ठ बनानेवाले हों। ९. **इमे द्यावापृथिवी अन्तरा**=इस द्युलोक व पृथिवीलोक के बीच में **ये अग्नयः** =जो माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियाँ हैं, वे **समनसः**=समान मनवाले हों, उन सबकी यह समान कामना हो कि हमें इन भावी नागरिकों को उत्तम बनाना है। १०. तुम दोनों पति-पत्नी **ग्रैष्मौ**=गरमी व उत्साहवाले बनो, **ऋतू**=नियमित गतिवाले होके **अभिकल्पमाना**= शरीर व अध्यात्म बल का सम्पादन करनेवाले बनो। ११. **इन्द्रमिव**=सब इन्द्रियों को जीतकर इन्द्र के समान बने हुए तुझे **देवाः**=सब दिव्य गुण **अभिसंविशन्तु**=प्राप्त हों। १२. **तया देवतया**=उस प्रसिद्ध देवता परमात्मा के साथ सम्पर्क के द्वारा **अङ्गिरस्वत्**=अङ्ग-अङ्ग में रस के सञ्चारवाले होकर **ध्रुवे सीदतम्**=तुम ध्रुव होकर इस मर्यादावाले घर में आसीन होओ। प्रभु-सम्पर्क से तुम्हें शक्ति प्राप्त हो। तुम्हारा जीवन मर्यादित हो और सारा घर मर्यादा में चलनेवाला हो।

भावार्थ—पति-पत्नी क्रियाशील व पवित्रतावाले हों। प्रतिदिन प्रभु-सम्पर्क से अपने को प्रकृष्ट बलवाला बनाते हुए ये मर्यादा का पालन करनेवाले होकर घर में निवास करें।

ऋषिः—विश्वेदेवाः। **देवता**—वस्वादयो मन्त्रोक्ताः। **छन्दः**—भुरिक्प्रकृतिः[ङ], स्वराट्पङ्क्तिः[क], निचृदाकृतिः[र]। **स्वरः**—धैवतः[ङ], पञ्चमः[क,र]॥

'अग्नि—वैश्वानर'

[ङ]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्वसुभिः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा [क]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजू रुद्रैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा [र]सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूरादित्यैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा सजूर्ऋतुभिः सजूर्विधाभिः सजूर्विश्वैर्देवैः सजूर्देवैर्वयोनाधैरग्नये त्वा वैश्वानरायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥७॥

१. हे पत्नि! तू **ऋतुभिः सजूः**=ऋतुओं के साथ समान प्रीतिवाली है। ऋतुओं की भाँति ही तू बड़ी व्यवस्थित गतिवाली है। २. **विधाभिः सजूः**=(आपो वै विधाः, अद्भिर्हीदं सर्वं विहितम्—श० ८।२।२।८) जलों के साथ तू समान प्रीतिवाली है। ऋतुओं से तूने मर्यादा सीखी, तो जलों से तू शान्ति का पाठ लेती है, तेरा स्वभाव शीतलता व माधुर्य है। ३. **देवैः सजूः**=तू दिव्य गुणों के साथ समान प्रीतिवाली है। सब दिव्य गुणों को अपनाने का पूर्ण प्रयत्न करती है। ४. **वयोनाधैः देवैः सजूः**=(प्राणा वै वयोनाधाः प्राणैर्हीदं सर्वं वयुनं नद्धम्—श० ८।२।२।८) तू देदीप्यमान प्राणों के साथ प्रीतिवाली है। तेरी प्राणशक्ति तुझे तेजस्विनी बनाती है। तू अपनी प्राणशक्ति से चमकती है। ५. **त्वा**=तुझे **अश्विनौ अध्वर्यू**=कर्मों में व्यापृत रहनेवाले यज्ञशील माता-पिता **इह**=इस गृहस्थ में **सादयताम्**=बिठाएँ। वे **त्वा**=तुझे **अग्नये**=प्रगतिशील व्यक्ति के लिए तथा **वैश्वानराय**=सबका भला करनेवाले के लिए देते हैं। आदर्श पति के लिए दो बातें आवश्यक हैं—एक तो वह प्रगतिशील हो proggressive mentality को लिये हुए हो। दूसरा यह कि वह यथासम्भव सभी का भला करे। अग्नि

हो, वैश्वानर हो। किसी से वैर-विरोध करनेवाला न हो। ६. **ऋतुभिः सजूः**=ऋतुओं के साथ तेरी प्रीति हो। उनके समान तू सब कार्य समय पर करनेवाली हो। **विधाभिः सजूः**=जलों के साथ प्रीतिवाली हो, जलों की भाँति शान्त व मधुर बन। **वसुभिः सजूः**=वसुओं के साथ तेरा प्रेम हो, वसुओं के साथ अविरोध में चलती हुई तू अपने निवास को उत्तम बनानेवाली हो। **देवैः वयोनाधैः सजूः**=(छन्दांसि वै देवा वयोनाधाः छन्दाभिर्हीदं सर्वं प्रज्ञानं नद्धम्—श० ८।२।२।८) ज्ञान-ज्योति देनेवाले शब्दों से तेरी प्रीति हो, छन्दों के ज्ञान से अपने को आच्छादित करके वासनाओं के आक्रमण से तू अपने को सुरक्षित करनेवाली हो। **अश्विनौ अध्वर्यू**=कार्यों को कल पर न टालनेवाले यज्ञ के प्रवर्त्तक तेरे माता-पिता **त्वा**=तुझे **अग्नये वैश्वानराय**=अग्नि के समान प्रकाशमान (भद्रं वर्णं पुष्यन्) तथा सबको आगे ले-चलनेवाले (विश्वान् नरान् नयति) नेतृत्व देनेवाले व्यक्ति के लिए **इह**=यहाँ **सादयताम्**=प्राप्त कराएँ। ऐसे ही व्यक्ति को तेरा जीवन-सखा बनाएँ। ७. **ऋतुभिः सजूः**=तू ऋतुओं की साथी बन। उनकी भाँति नियमित गतिवाली हो। **विधाभिः सजूः**=जलों की साथी हो। उनकी भाँति सब वस्तुओं का निर्माण करनेवाली हो (विदधति इति विधाः) **रुद्रैः सजूः**=एकादश रुद्रों की तू संगिनी हो। दस प्राण व आत्मा तुझे प्रिय हों, इनकी उन्नति में तू अपनी उन्नति समझे। **देवैः वयोनाधैः सजूः**=इन शक्ति देनेवाले प्राणों के साथ तेरा साथ बना रहे। **अश्विनौ अध्वर्यू**=प्राणापान-शक्तिसम्पन्न परन्तु अहिंसात्मक (अ+ध्वर) जीवनवाले तेरे माता-पिता **त्वा**=तुझे **इह**=यहाँ गृहस्थ में **अग्नये वैश्वानराय** =(अगि गतौ) क्रियाशील व सर्वहितकर्त्ता व्यक्ति के लिए **सादयताम्**=प्राप्त कराएँ। ८. **ऋतुभिः सजूः**=तू ऋतुओं की सखी हो, उनमें ग्रीष्म से शुचिता का, वर्षा से आनन्द वर्षण का, शरत् से वासनाओं के शीर्ण करने का, हेमन्त से वृद्धि का, शिशिर से द्रुतगति—स्फूर्ति का तथा वसन्त से चारों ओर सुगन्ध फैलाने का पाठ तू पढ़। **विधाभिः सजूः**=जलों की तू सखी हो। जलों के समान तू नैर्मल्यवाली हो। **आदित्यैः सजूः**=बारह आदित्यों की तू सखी बन। उनसे शिक्षा ग्रहण करके संसार वृक्ष की विशिष्ट शाखा बनने का निश्चय कर (विशाखा), ज्येष्ठ बनने का संकल्प रख (ज्येष्ठ), कामादि से पराभूत न हो (अ+षाढ़ा), सदुपदेशों का श्रवण कर (श्रवणा), तेरा मार्ग सदा कल्याण का हो (भाद्रपदा), कल-कल की उपासना करनेवाली न हो (अश्विनी), शत्रुओं का अभी से छेदन प्रारम्भ कर (कृतिका), अपने अन्दर छिपे हुए कामादि शत्रुओं को ढूँढनेवालों में तू अग्रणी बन (मृगशिरस्), इन्हें मारकर तू अपना वास्तविक पोषण साध (पुष्य), यह निश्चय कर कि तुझसे पाप न हो (मघा=मा अघ)। इसी निष्पापता को सच्चा ऐश्वर्य समझ (मघ=ऐश्वर्य) उस समय यह प्रलोभनमय संसार तेरे लिए तुच्छ हो जाएगा (फल्गुनी, फल्गु=फोक) इस आश्चर्य को अपने जीवन में करनेवाली तू चित्रा होगी। यही आदित्यों का सखित्व है। **देवैः वयोनाधैः सजूः**=शक्तिप्रद प्राणों की तू सखी बन। आदित्य तो हैं ही प्राण। **त्वा**=ऐसी तुझे **अश्विनौ अध्वर्यू**=सदा क्रियाशील यज्ञमय जीवनवाले माता-पिता **अग्नये वैश्वानराय**=अग्निवत् सब दोषों का भस्म करनेवाले, सर्वहित साधक व्यक्ति के लिए **इह**=इस गृहस्थ में **सादयताम्**=प्राप्त कराएँ। ९. **ऋतुभिः सजूः**= तू ऋतुओं के साथ मित्रतावाली हो, ऋतुगामिनी हो। **विधाभिः सजूः**=जलों की तरह निरन्तर कर्मों में व्याप्त होती हुई उनकी सखी बन। **विश्वैः देवैः सजूः**=इस कर्मव्याप्ति द्वारा सब दिव्य गुणों की सङ्गिनी बन। **देवैः वयोनाधैः सजूः**=उत्तम जीवन के साथ सम्बद्ध करनेवाले (वयः+न ह) देवों के साथ तेरी मित्रता हो। **त्वा**=तुझे **इह**=इस गृहस्थाश्रम में **अश्विनौ अध्वर्यू**=प्राणापान शक्ति-सम्पन्न, यज्ञिय वृत्तिवाले माता-पिता **अग्नये वैश्वानराय**=आगे बढ़नेवाले, सर्वहित

साधक व्यक्ति के लिए ही **सादयताम्**=प्राप्त कराएँ।

भावार्थ—पत्नी नियमित जीवनवाली, शान्त, मधुर स्वभाववाली, दिव्य गुणोंवाली, प्राणशक्ति-सम्पन्न हो (नाजुक नहीं) और पति 'अग्नि'=उन्नतिशील व 'वैश्वानर' सबका भला ही करनेवाला हो। ऐसा होने पर ही ये प्रस्तुत मन्त्र के ऋषि 'विश्वेदेवाः' बन सकेंगे।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—दम्पती। **छन्दः**—भुरिग्जगती। **स्वरः**—निषादः॥

अपः+ओषधीः—आठ आदेश

प्राणम्मे पाह्यपानम्मे पाहि व्यानम्मे पाहि चक्षुर्मऽउर्व्या विभाहि श्रोत्रम्मे श्लोकय। अपः पिन्वौषधीर्जिन्व द्विपादव चतुष्पात्पाहि दिवो वृष्टिमेरय॥८॥

१. गत मन्त्र के पति-पत्नी से प्रभु कहते हैं कि हैं कि—हे जीव! **मे प्राणं पाहि**=मेरे दिये हुए प्राण की तू रक्षा करना। प्राणशक्ति का अपव्यय न करना। २. **मे अपानं पाहि**=मुझसे दी गई अपानशक्ति को सुरक्षित रखना। यही तेरे दोषों को दूर करके तेरे शरीर को निर्दोष बनाएगी। ३. **मे व्यानं पाहि**=मेरी दी हुई व्यानशक्ति की भी रक्षा करना। यह सारे शरीर में गति करती हुई तेरे सारे स्नायुसंस्थान को ठीक रक्खेगी। तुझे किसी प्रकार का नर्वससिस्टम का रोग पीड़ित न करेगा। ४. **मे चक्षुः**=मुझसे दी गई आँख को **उर्व्या**=विस्तीर्णता से **विभाहि**=विशिष्ट दीप्तिवाला करना। तेरा दृष्टिकोण सदा विशाल हो, संकुचित न हो। ५. **मे श्रोत्रं श्लोकय**=मेरे द्वारा प्रदत्त श्रोत्र को तू उत्तम शब्दों का सुननेवाला बनाना (श्लोकः=यशः, पद्यम्)। यह यश की ही बातें सुनें तथा ज्ञान की वाणियाँ ही इसे प्रिय हों। ६. इस सबके लिए **अपः पिन्व**=(पुष्णीहि—म०) जलों का ही शरीर में पोषण कर—प्यास लगने पर जलों से ही गले को सींच। **ओषधीः जिन्व** (प्राप्नुहि)=भोजन के लिए ओषधियों को प्राप्त कर। वनस्पति ही तेरा भोजन हो। ७. इस सात्त्विक भोजन से सात्त्विक वृत्तिवाला बनकर तू **द्विपात् अव**=सब मनुष्यों की रक्षा कर, सभी का प्रीणन करनेवाला हो। **चतुष्पात् पाहि**=गौ आदि चौपायों का भी तू रक्षण करनेवाला बन। ८. **दिवः**=ज्ञान की **वृष्टिम् ऐरय**=वृष्टि को तू प्रेरित कर। स्वयं ज्ञान प्राप्त करके औरों को भी ज्ञान देनेवाला बन अथवा **दिवः वृष्टिम् ऐरय**=तू आकाश से वृष्टि को प्रेरित कर। नियमपूर्वक यज्ञादि कर्मों को करता हुआ तू **'निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु'** इस प्रार्थना को क्रियान्वित करनेवाला बन।

भावार्थ—मन्त्र में उल्लिखित आठ आदेशों का हम पालन करें। प्राण, अपान, व्यान की रक्षा करें, विशाल दृष्टि व उत्तम श्रवणवाले बनें, जलों व ओषधियों का ही ग्रहण करें, मनुष्य व अन्य प्राणियों का ध्यान करें और अन्त में यज्ञादि से सामयिक वर्षा को सिद्ध करें।

ऋषिः—विश्वेदेवाः, प्रजापत्यादयः। **छन्दः**—निचृद्ब्राह्मीपङ्क्तिः[क], शक्वरी[ख]। **स्वरः**—पञ्चम[क] धैवतः[ख]॥

वयः+छन्दः

[क]मूर्धा वयः प्रजापतिश्छन्दः क्षत्रं वयो मयन्दं छन्दो विष्टम्भो वयोऽधिपतिश्छन्दो विश्वकर्मा वयः परमेष्ठी छन्दो वस्तो वयो विवलं छन्दो वृष्णिर्वयो विशालं छन्दः [ख]पुरुषो वयस्तन्द्रं छन्दो व्याघ्रो वयोऽनाधृष्टं छन्दः सिꣳहो वयश्छदिश्छन्दः पष्ठवाड् वयो बृहती छन्दऽउक्षा वयः ककुप् छन्दऽऋषभो वयः सतोबृहती छन्दः॥९॥

१. प्रस्तुत मन्त्रों में 'वयः' शब्द जीवन का वाचक है और 'छन्दः' इच्छा या संकल्प का अथवा 'वीर्यं छन्दासि' शतपथ ४।४।३।१ के अनुसार 'छन्दः' का अर्थ वीर्य व शक्ति

है। वस्तुतः संकल्प में भी 'कृपू सामर्थ्ये' के अनुसार शक्ति की ही भावना है। प्रभु कहते हैं कि यदि तुम्हारा **वयः**=जीवन **मूर्धा**=शिर-स्थानापन्न है, अर्थात् यदि तुम समाज में सबसे ऊँचे स्थान पर हो तो **प्रजापतिः छन्दः**=तुम्हारा प्रबल संकल्प यह होना चाहिए कि तुम प्रजापति बनोगे, प्रजा का रक्षण करनेवाले बनोगे। समाज में ब्राह्मण का स्थान सर्वोच्च है, ब्राह्मण को प्रजा-रक्षण अपना मौलिक कर्त्तव्य समझना चाहिए। २. **क्षत्रं वयः**=यदि तुम्हारा जीवन क्षत्रिय का है तो **मयन्दं छन्दः**=तुम्हारी कामना यह होनी चाहिए कि (मयं ददाति इति-द०) तुम सबको सुख देनेवाले बनो। क्षत्रिय का कार्य 'क्षतात् त्राण' ही तो है। जो क्षत्रिय औरों को घावों से बचाकर उन्हें सुख नहीं पहुँचाता वह क्षत्रिय नहीं है। ३. **विष्टम्भः वयः**=(विष्टभ्नोति अन्नादिकं जगत् स्तम्भयति-म०) यदि तुम्हारा जीवन 'विष्टम्भ' का है, उस वैश्य का है जो अन्नादि को स्तम्भों [elevators] पर सुरक्षित रखता है तो **अधिपतिः छन्दः**=उसकी यही कामना होनी चाहिए कि वह अन्नादि का अधिष्ठाता होता हुआ प्रजा का रक्षक हो, दुर्भिक्षादि के समय अपने उन अन्न-भण्डारों से सभी को अन्न देनेवाला हो। ४. **विश्वकर्मा वयः**=यदि तुम्हारा जीवन सब कर्मों को करनेवाला है तो तुम्हारी **छन्दः**=यह कामना हो कि **परमेष्ठी**=मैं परम स्थान में स्थित होऊँ। बिना कर्मों में प्रवृत्त हुए, आलस्य में पड़े हुए तुम उच्च स्थान में स्थित नहीं हो सकते। ५. **वस्तः वयः**=(वस्त् to hurt, to kill) यदि तुम यह चाहते हो कि तुम्हारा जीवन सब बुराइयों का ध्वंस करनेवाला हो तो **विवलं छन्दः**=तुम्हारी सदा यह इच्छा रहनी चाहिए कि मैं (वल् to go) विशिष्ट कर्मों में लगा रहूँ। उत्तम कर्मों में लगे रहना ही बुराइयों को समाप्त करने का तरीका है। 'वस्त' यह संज्ञा बकरी की भी है, उसका दूध 'सर्वरोगापहा' सब रोगों का हनन करनेवाला है। वह इसीलिए कि 'व्यायामात्' बकरी दिनभर में ख़ूब व्यायाम कर लेती है। मेरा जीवन भी 'वस्त'=बुराइयों को नष्ट करनेवाला तभी बनेगा जब मैं विशिष्ट गतिवाला, कर्मशील बनने का संकल्प रक्खूँगा। ६. **वृष्णिः वयः**=निरन्तर गतिशीलता से तुम्हारा जीवन **वृष्णिः**=खूब वीर्यवान् बना है तो **विशालं छन्दः**=अब तुम्हारी इच्छा यही हो कि मैं **वि**=विविध उत्तम कर्मों से (शालते) शोभायान होऊँ। शक्ति का विनियोग उत्तम कर्मों में ही होना ठीक है। ७. **पुरुषो वयः**=यदि तुम्हारा जीवन पौरुष सम्पन्न पुरुष का बना है तो **तन्द्रं छन्दः**=(क) तुम्हारी इच्छा यही हो कि मैं (पङ्क्तिर्वै तन्द्रं छन्दः) पाँचों का धारण करनेवाला बनूँ 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र व निषाद' सभी का हित करना मेरा धर्म हो। अथवा ज्ञानेन्द्रिय, कर्मेन्द्रिय व प्राण-पञ्चकों को वशीभूत करने का मेरा प्रयत्न हो। (ख) अथवा तन्द्रं=तन्त्रम् =कुटुम्ब का मैं धारण करनेवाला बनूँ। ८. **व्याघ्रः वयः**=यदि तुम्हारा जीवन 'पुरुषव्याघ्र' का हुआ है-तुम व्याघ्र के समान बने हो तो **अनाधृष्टं छन्दः**=प्रबल कामना करो कि मैं शत्रुओं से धर्षित न होऊँ। ९. **सिंहो वयः**=यदि 'पुरुषसिंह' के जीवनवाले हो तो **छदिः छन्दः**='नरसिंह' की भाँति प्राणिमात्र को सुरक्षित करनेवाले बनो। तुम्हारी शक्ति निर्बलों को सबलों के अत्याचार से बचानेवाली हो। १०. **पष्ठवाट् वयः**=(पष्ठे=पृष्ठभागे वहतीति-म०) यदि तुम्हारा जीवन पीठ पर खूब कार्यभार उठाने में समर्थ पुरुष का हुआ है तो **बृहती छन्दः**=(वाग् वै बृहती-श० १४।४।१।२२) वेदवाणी के अनुसार ही निरन्तर कार्यों को निभाने की तुम्हारी कामना हो। शक्ति है तो तुम मनमाने मार्ग से न चलने लग जाना। शास्त्रीय मार्ग से चलने से ही शक्ति बढ़ती है, शक्ति के मद में शास्त्रीय मार्ग छोड़ा और शक्ति का ह्रास हुआ। ११. **उक्षा वयः** =(उक्ष् to grow up, become strong) यदि तुम जीवन को शक्तिशाली पुरुष का जीवन बनाना चाहते हो, यदि निरन्तर उन्नति चाहते हो तो **ककुप् छन्दः**=दिशाएँ

ही तुम्हारे संकल्प हों, अर्थात् इन दिशाओं से तुम प्रेरणा लेकर चलो। 'प्राची' से आगे बढ़ना, 'दक्षिणा' से नैपुण्य प्राप्त करना, 'प्रतीची' से प्रत्याहार का पाठ पढ़कर, 'उदीची' से ऊपर उठना और 'ध्रुवा' से दृढ़ता व 'ऊर्ध्वा' से उन्नति के शिखर पर पहुँचने की भावना को लेना। 'ककुप्' शब्द का एक अर्थ 'शिखर' है। शिखर (summit) पर पहुँचना तुम्हारा ध्येय ही बन जाए। 'ककुप्' का अर्थ (a sacred treatise) धर्मशास्त्र भी है—शास्त्र के अनुसार चलने का संकल्प होने पर उन्नति होगी। १२. **ऋषभो वयः**=यदि श्रेष्ठ जीवनवाले 'पुरुषर्षभ' होना चाहते हो तो **सतोबृहती छन्दः**=सत् को=प्राप्त वस्तु को ही (बृहि वृद्धौ) बढ़ाने की कामना करो। सदा वर्त्तमान में चलो 'वर्त्तमानेन वर्त्तयन्ति मनीषिणः'। भूतकाल में रहकर 'था' को ही न बोलते रहो, भूतकाल ही के गीत न गाते रहो। न ही सदा भविष्यत् की बातें करते हुए 'गा' का ही प्रयोग करते रहो, और हवाई किले ही न बनाते रह जाओ। वर्त्तमान को ही उन्नत करने का प्रयत्न करो।

भावार्थ—मन्त्र के बारह आदेशों का ध्यान करके हम अपने जीवन को अधिकाधिक सुन्दर बनाएँ।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—विद्वांसः। **छन्दः**—निचृदष्टिः। **स्वरः**—मध्यमः॥

लोकं ता इन्द्रम्

अनड्वान्वयः पङ्क्तिश्छन्दो धेनुर्वयो जगती छन्दस्त्र्यविर्वयस्त्रिष्टुप् छन्दो दित्यवाड् वयो विराट् छन्दः पञ्चाविर्वयो गायत्री छन्दस्त्रिवत्सो वयऽ उष्णिक् छन्दस्तुर्यवाड् वयोऽनुष्टुप् छन्दः ॥१०॥

१३. गत मन्त्र में १२ संख्या हो चुकी है, अतः १३ से यहाँ प्रारम्भ करते हैं कि **अनड्वान् वयः**=यदि जीवन को गृहस्थ की गाड़ी के वहन के योग्य बनाना है तो **पङ्क्तिः छन्दः**=पाँच ज्ञानेन्द्रियों, पाँच कर्मेन्द्रियों व पाँच प्राणों को वशीभूत करने की कामना करना। इस गृहस्थ में पाँच यज्ञों को विधिपूर्वक करने का संकल्प रखना। इन यज्ञों के अभाव में गृहस्थ-शकट उत्तमता से नहीं चलता। १४. **धेनुः वयः**=यदि तुम्हारा जीवन 'धेनु' का बना है—दुधारू गौ के समान तुम्हारे पास ऐश्वर्यरूप दुग्ध की कमी नहीं तो **जगती छन्दः**=लोकहित करने की कामना करना। १५. **त्र्यविः वयः**='धर्म, अर्थ व काम' तीनों का रक्षण (त्रि+अव) करनेवाला जीवन बनाना है तो **त्रिष्टुप् छन्दः**='काम, क्रोध व लोभ' तीनों को रोकने की तुम्हारी कामना हो। इन तीन शत्रुओं को रोककर ही तुम तीनों पुरुषार्थों को सिद्ध कर सकते हो। कामात्मतारूप काम शत्रु है अन्यथा यह पुरुषार्थ है। 'अर्थलोभ ' शत्रु है, लोभ न होने पर 'अर्थ' पुरुषार्थ है। 'विचारशून्य क्रोध' शत्रु है—परन्तु विचारसहित मन्यु 'धर्म' है। मनुष्य 'त्रिष्टुप्' से ही त्र्यवि बनता है। 'काम, क्रोध व लोभ' को रोककर ही 'धर्मार्थकाम' की साधना होती है। १६. **दित्यवाट् वयः**=(दितेः कर्म दित्यम्=खण्डनम्) यदि तूने जीवन को दित्य=शत्रु-खण्डन का वहन करनेवाला बनाना है तो तू **विराट् छन्दः**=विशेषरूप से चमकनेवाला बनने की इच्छा कर। शत्रु-खण्डन करके ही तू चमक पाएगा, अन्यथा कामादि तेरी दीप्ति को समाप्त कर देंगे। १७. **पञ्चाविःवयः**=यदि पाँचों यमों व पाँचों नियमों की रक्षा करनेवाला तेरा जीवन है तभी तू **गायत्री छन्दः**=प्राण-रक्षण की इच्छा करना। (**गयाः प्राणाः, त्र**=रक्षा)। यम-नियम के पालन के बिना प्राण-रक्षण सम्भव नहीं। उनके पालन के अभाव में प्राण-रक्षण की आवश्यकता भी नहीं। १८. **त्रिवत्सो वयः**='ज्ञान, कर्म व

उपासना' तीनों की साधना के लिए **उष्णिक् छन्दः**=(उत् स्निह्यति) तूने उत्कृष्ट स्नेह करने की कामना करनी। तेरा स्नेह सदा उत्कर्षवाला हो, तुझमें हीनाकर्षण न हो। १९. **तुर्यवाट् वयः**=(तुर्यं वहति) चतुर्थ अवस्था, अर्थात् संन्यास का वहन करनेवाला तेरा जीवन बने तो **अनुष्टुप् छन्दः**=अनुक्षण तेरी कामना प्रभु के स्तवन की ही हो। प्रतिक्षण प्रभु- स्तवन ही तुझे इस तुरीयावस्था में दृढ़ रक्खेगा और तू सच्चा संन्यासी बन पाएगा।

भावार्थ—प्रस्तुतः मन्त्र के सात नियम अवश्य ध्यान में रखने चाहिएँ, जिससे हम उनके पालन में प्रवृत्त हो पाएँ।

ऋषिः—विश्वेदेवाः। **देवता**—इन्द्राग्नी। **छन्दः**—भुरिगनुष्टुप्। **स्वरः**—गान्धारः॥

पृष्ठेन

इन्द्राग्नीऽअव्यथमानामिष्टकां दृꣳहतं युवम्।
पृष्ठेन द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षं च विबाधसे॥११॥

१. प्रभु पति-पत्नी को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि—**'इन्द्रः अग्निःच'**=पति ने 'इन्द्र' बनना है—जितेन्द्रिय होना है तथा ऐश्वर्य को कमानेवाला बनना है, पत्नी ने 'अग्नि' बनकर घर को सदा आगे ले-चलना है। घर की उन्नति का बहुत कुछ निर्भर पत्नी पर ही होता है। हे **इन्द्राग्नी**=जितेन्द्रिय पति व अग्नितुल्य पत्नि! **युवम्**=तुम दोनों **अव्यथमानाम्**=(व्यथ् to change, to be disturbed) कभी विहत न होते हुए **इष्टकाम्**=यज्ञ को **दृंहतम्**=घर में दृढ़ करो। घर के अन्दर यज्ञ अविच्छिन्नरूप से अपने समय पर होता रहे। प्रातः का यज्ञ सायं तक, और सायं का यज्ञ प्रातः तक हम सबके मनों को सौमनस्य का देनेवाला हो। घर में यज्ञ के विच्छिन्न न होने से सन्तानों के चरित्र भी विच्छिन्न नहीं होते। २. घर के प्रत्येक व्यक्ति के लिए कहते हैं कि हे गृहजनो! तुम **पृष्ठेन**=('तेजो ब्रह्मवर्चसं श्रीर्वै पृष्ठानि' ऐ० ६। ५) ब्रह्मवर्चस् के द्वारा **द्यावापृथिवी**=द्यावा=मस्तिष्क को तेज के द्वारा, पृथिवी—शरीर को, **च**=और **अन्तरिक्षम्**=हृदयान्तरिक्ष को, श्रीः (श्रीञ् सेवायाम्=भज्) भक्ति व सेवा के द्वारा **विबाधसे**=विगत बाधावाला करते हो, निर्बाध करते हो। तुम्हारा मस्तिष्क ब्रह्मवर्चस् से दीप्त होता है, शरीर तेज से और हृदयान्तरिक्ष **श्री**=भक्ति से देदीप्यमान हो उठता है।

भावार्थ—पति जितेन्द्रिय हो, पत्नी घर की उन्नति-साधिका हो। घरों में यज्ञ अविच्छिन्न रूप से चलें। मस्तिष्क ज्ञानमय, शरीर तेजस्वी व हृदय भक्ति-सम्पन्न हो।

ऋषिः—विश्वकर्मा। **देवता**—वायुः। **छन्दः**—भुरिग्विकृतिः। **स्वरः**—मध्यमः॥

मही-स्वस्ति-शन्तमछर्दि

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे व्यचस्वतीं प्रथस्वतीमन्तरिक्षं यच्छान्तरिक्षं दृꣳहान्तरिक्षं मा हिꣳसीः। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानायोदानाय प्रतिष्ठायै चरित्राय। वायुष्ट्वाभिपातु मह्या स्वस्त्या छर्दिषा शन्तमेन तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥१२॥

१. पत्नी के लिए कहते हैं कि **विश्वकर्मा**=सब कर्मों को करनेवाला प्रभु **त्वा**=तुझे **अन्तरिक्षस्य पृष्ठे**=हृदयान्तरिक्ष की श्री में (पृष्ठ=श्री—ऐ० ६।५) **सादयतु**=स्थापित करे, अर्थात् तुझमें सेवा की भावना को जन्म दे (श्रिञ् सेवायाम्)। अथवा **विश्वकर्मा**=आजीविका के लिए सब धर्म्य कर्मों को करने के लिए सदा उद्यत पति तुझे सेवा की वृत्तिवाला बनाये। पति को गृह-भार को वहन करते हुए देखकर पत्नी में इस वृत्तिका उत्पन्न होना स्वाभाविक

है। 'ध्रुवैधि पोष्ये मयि' पोषण करनेवाले पति में पत्नी ध्रुव होकर रहेगी ही। २. तू **व्यचस्वतीम्**=(वि अञ्च्) वस्तुओं को व्यक्त करनेवाले ज्ञानवाली है तथा **प्रथस्वतीम्**=(प्रथ विस्तारे) हृदय के विस्तारवाली है। जहाँ तेरा ज्ञान ऊँचा है वहाँ तेरा हृदय भी विशाल है। ३. **अन्तरिक्षं यच्छ**=तू अपने मन को नियमित कर, मन को काबू करनेवाली हो। **अन्तरिक्षं दृंह**=इस मन को दृढ़ बना तथा **अन्तरिक्षं मा हिंसीः**=अपने मन को नष्ट न होने दे। 'मन के हारे हार है'—मन का उत्साह गया तो जीवन समाप्त हुआ, मन के उत्साह में ही सब उन्नति है। ४. इस प्रकार मन को नियमित, दृढ़ व जीवित बनाकर तू **प्राणाय**=प्राणशक्ति के लिए, **अपानाय**=दोषों को दूर करनेवाली अपानशक्ति के लिए, **व्यानाय**=सर्वशरीर व्यापी व्यानशक्ति के लिए और उसके द्वारा सारे नाड़ी-संस्थान के स्वास्थ्य के लिए, **उदानाय**=कण्ठदेश में ठीक स्थिति को रखनेवाली उदानवायु के लिए, **प्रतिष्ठायै**=स्थिरता के लिए तथा **चरित्राय**=उत्तम आचरण के लिए, **विश्वस्मै**=इन सब बातों के लिए सन्नद्ध हो। ५. **वायुः** (वा गतौ)=क्रियाशील पति **त्वा मह्या**=तुझे गौ के द्वारा (मही गोनाम—नि० २।११) **शन्तमेन छर्दिषा**=सब ऋतुओं में अधिक-से-अधिक शान्ति देनेवाले घर से **स्वस्त्या**=सब आवश्यक वस्तुओं को प्राप्त कराने से अविनाश के द्वारा या उत्तम स्थिति के द्वारा **अभिपातु**=अन्दर व बाहर से सुरक्षित करे—इहलोक व परलोक के दृष्टिकोण से सुरक्षित करे। ६. **तया देवतया**=उस गौ, उत्तम घर व सम्पत्ति आदि को प्राप्त करानेवाले देवतुल्य पति के साथ **अङ्गिरस्वत्**=अङ्ग-अङ्ग में रसवाली तू **ध्रुवा**=ध्रुव होकर **सीद**=इस गृह में बैठ। ६. जिस घर में गौ होगी वहाँ 'देवत्व—अङ्गिरसत्व व ध्रुवत्व' ये सभी बातें सम्भव होंगी। गोदुग्ध सेवन से मन सात्त्विक व दैवी सम्पत्तिवाला बनाता है—गोरस शीतवीर्य को जन्म देकर अङ्ग-अङ्ग में रस का सञ्चार करनेवाला होता है।

भावार्थ—पत्नी हृदय में सेवा की वृत्तिवाली हो, ज्ञान के लिए विस्तारवाली, विशाल हृदयवाली हो। मन को दृढ़ व नियमित रक्खे। पति उत्तम गौ, उत्तम घर व समृद्धता का ध्यान करे।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—दिशः। **छन्दः**—विराट्पङ्क्तिः। **स्वरः**—पञ्चमः॥

राज्ञी-अधिपत्नी

राज्ञ्यसि प्राची दिग्विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक् ॥१३॥

१. हे पत्नि! **राज्ञी असि**=तू (राज् दीप्तौ) शरीर में स्वास्थ्य की दीप्तिवाली है—मन में भक्ति की दीप्तिवाली तथा मस्तिष्क में ज्ञान की दीप्तिवाली है। इसी से **प्राची दिक्**=तेरी दिशा (प्र अञ्च्) आगे बढ़ने की बनी है। इन दीप्तियों के बिना आगे बढ़ना सम्भव नहीं होता। २. तू **विराट् असि**=विशेषरूप से दीप्त हुई है, क्योंकि तू (विराधनाद्वा) कार्यों को सदा विशिष्टरूप से सिद्ध करने का ध्यान करती है—प्रत्येक कार्य को अप्रमाद व गम्भीरता से करती है। इसी से **दक्षिणा दिक्**=तेरी दिशा दाक्षिण्य की हुई है। तू अपने कार्यों में बड़ी कुशल हो गई है। ३. **सम्राट् असि**=तू घर पर उत्तम प्रकार से शासन करनेवाली है—सारे घर को बड़े व्यवस्थित ढङ्ग से चलाती है। इसी से तू स्वयं भी **प्रतीची दिक्**=(प्रति अञ्च्) इन्द्रियों को विषयों से व्यावृत करनेवाली—इन्द्रियों का प्रत्याहरण करनेवाली बनी है। स्वयं अपना शासन न कर सकनेवाला औरों का शासन नहीं कर सकता। ४. **स्वराट्**

असि=तू अपना शासन करनेवाली बनी है अथवा स्व को—आत्मा को दीप्त करनेवाली हुई है। इसी से उदीची (उद् अञ्च) तेरी दिशा उन्नति की हुई है। बिना स्वशासन के कोई कभी उन्नत नहीं हुआ। ५. **अधिपत्नी असि**=तू घर की अधिष्ठातृरूपेण रक्षिका है, अतः **बृहती दिक्**=(बृहि वृद्धौ) घर को सब प्रकार से बढ़ाने की ही तेरी दिशा है। घर की सर्वतोमुखी उन्नति करने में ही तू प्रवृत्त है। जो उन्नति न करे वह 'अधिपत्नी' कैसी!

भावार्थ—पत्नी ने 'राज्ञी, विराट्, सम्राट्, स्वराड् व अधिपत्नी' बनना है।

ऋषिः—विश्वेदेवाः। **देवता**—वायुः। **छन्दः**—स्वराड्ब्राह्मीबृहती। **स्वरः**—मध्यमः॥

ज्योतिष्मती

विश्वकर्मा त्वा सादयत्वन्तरिक्षस्य पृष्ठे ज्योतिष्मतीम्। विश्वस्मै प्राणायापानाय व्यानाय विश्वं ज्योतिर्यच्छ। वायुष्टेऽधिपतिस्तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥१४॥

१. **विश्वकर्मा**=सारे संसार के कर्मों का सञ्चालक वह प्रभु तुझे **अन्तरिक्षस्य**=हृदयान्तरिक्ष की **पृष्ठे**=पीठ पर **सादयतु**=बिठाये। जैसे घुड़सवार घोड़े की पीठ पर अविचल होकर बैठता है, उसी प्रकार तू मन पर अधिष्ठित हो। मन पूर्णरूप से तेरे वश में हो अथवा हृदयान्तरिक्ष की श्री (ऐ० ६।५) में तुझे स्थापित करे। तू **ज्योतिष्मतीम्**=ज्योतिर्मय है। तेरा जीवन ज्ञान की ज्योति से जगमगा रहा है। ३. ज्ञान की ज्योति से दीप्त होकर तू **प्राणाय**=प्राणशक्ति के लिए, **अपानाय**=दोषों को दूर करनेवाली अपानशक्ति के लिए तथा **व्यानाय**=सारे शरीर में व्याप्त होकर नाड़ीसंस्थान को उत्तम रखनेवाली व्यानशक्ति के लिए **विश्वस्मै**=इन सबके लिए समर्थ हो। ४. इस प्रकार प्राणापान, व्यान से 'भूर्भुवः स्वः' से अलंकृत होकर 'स्वस्थ, ज्ञानशीला व जितेन्द्रिय' बनकर तू अपने सन्तानों को भी **विश्वं ज्योतिः यच्छ**=सम्पूर्ण ज्ञान देनेवाली बन। ५. **वायुः ते अधिपतिः**=तेरा गुण-सम्पन्न पति क्रियाशील हो। क्रियाशीलता से दोषों का गन्धन—हिंसन करनेवाला हो। ६. **तया देवतया**=उस देवतुल्य पति के साथ **अङ्गिरस्वत्**=अङ्ग-प्रत्यङ्ग में रसवाले व्यक्ति की भाँति तू **ध्रुवा सीद**=ध्रुव होकर रहनेवाली बन।

भावार्थ—पत्नी का जीवन भी ज्योतिर्मय हो, जिससे वह सन्तानों को भी ज्ञान दे सके।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—ऋतवः। **छन्दः**—स्वराडुत्कृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

नभ+नभस्य

नभश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। वार्षिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥१५॥

१. हे पति-पत्नि! **नभः च**=तुम नभ बनो। निरुक्त के अनुसार तुम **'नेता भासाम्'**=दीप्तियों के प्रणयन करनेवाले बनो। अपने को ज्ञान की दीप्ति से भरने का प्रयत्न करो। इसी से **नभस्यः**=(नभसि साधुः, नभ हिंसायाम्) सब बुराइयों के—काम, क्रोध, लोभ के हिंसन में तुम समर्थ बनोगे। संक्षेप में अपने को ज्ञान से परिपूर्ण करो और बुराइयों को समाप्त कर

दो। २. इस प्रकार बुराइयों को समाप्त करके **वार्षिकौ**=एक-दूसरे पर आनन्द की वर्षा करनेवाले बनो। **ऋतू**=तुम दोनों पति-पत्नी का जीवन नियमित गतिवाला हो (ऋ+गतौ)। जिस प्रकार ऋतुएँ अपने समय पर आती हैं, उसी प्रकार तुम अपने कार्य को समयानुसार करनेवाले बनो। ३. ऐसा बनने पर ही तुम **अग्नेः**=प्रभु को **अन्तः**=हृदयान्तरिक्ष में **श्लेषः असि**=आलिङ्गन करनेवाले होते हो। ४. प्रभु के सम्पर्क में रहने से **द्यावापृथिवी**=तुम्हारे मस्तिष्क व शरीर **कल्पेताम्**=सामर्थ्य-सम्पन्न बनें। ५. इसके लिए **आपः ओषधयः कल्पन्ताम्**=जल और ओषधियाँ तुम्हारे लिए शक्तिशाली हों। ६. **अग्नयः**=माता (दक्षिणाग्नि), पिता (गार्हपत्य अग्नि) व आचार्य (आहवनीय अग्नि)—ये सब **सव्रताः**=समान व्रतवाले होकर **मम ज्यैष्ठ्याय**=मेरी ज्येष्ठता के लिए **पृथक्**=अलग-अलग, पाँच वर्ष तक माता, आठ वर्ष तक पिता आचरण व शिष्टाचार को तथा आचार्य मेरे ज्ञान को उन्नत करके मेरी ज्येष्ठता को सिद्ध करनेवाले हों। ७. वस्तुतः **इमे द्यावापृथिवी अन्तरा**=इस द्युलोक व पृथिवीलोक के मध्य में **ये अग्नयः**=जो भी माता-पिता व आचार्य हैं, वे **समनसः**=समान मनवाले हों। उनकी एक ही भावना हो कि हमें राष्ट्र के इन भावी नागरिकों को ज्येष्ठ बनाना है, खूब उन्नत करना है। ८. जब इस प्रकार उन्नत होकर व्यक्ति गृहस्थ में प्रवेश करेंगे तभी वे **वार्षिकौ**=आनन्द की वर्षा करनेवाले होंगे **ऋतू**=नियमित जीवनवाले होंगे तथा **अभिकल्पमाना**=शरीर व बौद्धिक उन्नति करनेवाले होंगे। शरीर व बुद्धि दोनों को शक्तिशाली बनाएँगे। इस लोक व परलोक दोनों को सफल करेंगे। शरीर व आत्मा दोनों का ध्यान करेंगे। ९. **इन्द्रम् इव**=जितेन्द्रियता के द्वारा इन्द्र के समान बने हुए इनको **देवाः**=सब देव **अभिसंविशन्तु**=प्राप्त हों। इनके अन्दर सारी अच्छाइयाँ हों। १०. ऐसे बने हुए ये पति-पत्नी **तया देवतया**=उस परमात्मा के साथ, देव बनकर महादेव के साथ रहते हुए, अर्थात् सशक्त शरीरवाले होते हुए **ध्रुवे**=ध्रुव बनकर—मर्यादित व स्थिर जीवनवाले होते हुए **सीदतम्**=इस घर में बैठें। इनका जीवन मर्यादामय व शान्त (still=स्थिर) हो।

भावार्थ—पति-पत्नी ज्ञान-ज्योतियों का प्रणयन करनेवाले तथा बुराइयों को समाप्त करनेवालों में उत्तम बनकर, प्रभु-सम्पर्क से अपने को शक्ति-सम्पन्न करते हुए, ध्रुवता से, मर्यादा व शान्ति से घर में निवास करें।

सूचना—नभः=श्रावण मास का नाम है, नभस्य=भाद्रपद का, श्रवण ही ज्ञान-प्रणयन का उपाय है। बुराइयों को समाप्त करना ही भद्र का पद=कल्याण का मार्ग है।

ऋषिः—विश्वेदेवाः। **देवता**—ऋतवः। **छन्दः**—उत्कृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

इष+ऊर्ज=शरत्

इ॒षश्चो॒र्जश्च॑ शार॒दावृ॑तूऽअ॒ग्नेर॑न्तः॒श्ले॒षो ऽसि॒ कल्पे॑तां॒ द्यावा॑पृथि॒वी कल्प॑न्ता॒मापऽओष॑धयः॒ कल्प॑न्ताम॒ग्नयः॑ पृथ॒ङ् मम॒ ज्यैष्ठ्या॑य॒ सव्र॑ताः। येऽअ॒ग्नयः॑ सम॑नसो ऽन्त॒रा द्यावा॑पृथि॒वीऽइ॒मे। शार॒दावृ॑तूऽअ॒भि॒कल्प॑मानाऽइन्द्र॒मिव॑ दे॒वाऽअ॑भि॒संवि॑शन्तु॒ तया॑ दे॒वत॑याङ्गिर॒स्वद् ध्रु॒वे सी॑दतम्॥१६॥

१. तुम **इषः**=(इष प्रेरणे=प्र+ईर=प्रकृष्ट गति) प्रकृष्ट गतिवाले होओ **च**=तथा **ऊर्जः**=बल व प्राणशक्ति-सम्पन्न बनो। **'इष'** आश्विनमास का नाम है—इसी में क्षत्रिय घोड़ों को (अश्वों को) काठी लगाकर यात्राओं के लिए निकलते हैं, उसी प्रकार तुम्हारा जीवन भी इन्द्रियाश्वों

पर आरुढ़ होकर गतिवाला हो। आत्मवश्य इन्द्रियों से विचरण ही यात्रापूर्ति का साधन है। **'ऊर्ज'** कार्त्तिक मास का नाम है—'कृन्तन'=शत्रुओं का छेदन-भेदन करने के लिए तुम्हें भी बल व पराक्रमवाला बनना है। २. शक्तिशाली बनकर **शारदौ**=तुम शारद बनो—शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले बनों। जैसे शरद में सब पत्ते झड़ जाते हैं, उसी प्रकार तुमसे सब बुराइयाँ झड़ जाएँ। **ऋतू**=तुम नियमित गतिवाले बनो। ३. **अग्नेः अन्तः श्लेषः असि**=हृदय में प्रभु का आलिङ्गन करनेवाले बनों। ४. **द्यावापृथिवी कल्पेताम्**=तुम्हारे शरीर व मस्तिष्क शक्तिशाली हों। ५. उसके लिए **आपः ओषधयः कल्पन्ताम्**=जल व ओषधियाँ तुम्हें शक्तिशाली बनाएँ।.६. **अग्नयः**=माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियाँ **मम ज्यैष्ठयाय**=मेरी ज्येष्ठता के सम्पादन के लिए **सव्रताः**=समान व्रतवाले होकर **पृथक्**= अलग-अलग, क्रमशः ५, ८ व २५ वर्ष तक **कल्पन्ताम्**=समर्थ हों। ये मेरे जीवन को खूब उन्नत कर दें। ७. **इमे द्यावापृथिवी अन्तरा**=इस द्युलोक व पृथिवीलोक के मध्य में **अग्नयः**=जो भी माता-पिता व आचार्य हैं, वे **समनसः**=समान मनवाले हों। उनकी समानरूप से एक ही कामना हो कि इस राष्ट्र की भावी सन्तति को उत्तम-ज्येष्ठ बनाना है। ८. **शारदौ**=इस प्रकार उत्तम बने हुए युवक और युवति सब बुराइयों को शीर्ण करनेवाले हों। **ऋतू**=नियमित गतिवाले हों। **अभिकल्पमाना**=शरीर व बुद्धि दोनों को समर्थ बनाएँ। अभ्युदय व निःश्रेयस दोनों का साधन करें। ९. **इन्द्रमिव**=इन्द्र की भाँति बने हुए इस व्यक्ति को **देवाः अभिसंविशन्तु**=सब देवता प्राप्त हों। १०. सब देवताओं के समावेश से देव बनकर **तया देवतया**=उस महादेव के साथ, अर्थात् उसकी उपासना करते हुए **अङ्गिरस्वत्**=अङ्ग-अङ्ग में रसवाले की भाँति, अर्थात् शक्तिशाली अङ्गोंवाले होते हुए **ध्रुवे सीदतम्**=ध्रुव होकर—मर्यादित जीवनवाले होकर घर में विराजो।

भावार्थ—पति-पत्नी गतिशील हों। गतिशीलता से शक्तिशाली बनें। शक्ति से सब शत्रुओं को शीर्ण करनेवाले हों। नियमित गतिवाले होकर, प्रभु की उपासना से अङ्ग-अङ्ग में रस का सञ्चार करें और ध्रुव होकर घर में निवास करें।

ऋषिः—विश्वेदेवाः। **देवता**—ऋतवः। **छन्दः**—स्वराड्ब्राह्म्यनुष्टुप्। **स्वरः**—गान्धारः॥

आयु-ज्योतिः

आयुर्मे पाहि प्राणं मे पाह्यपानं मे पाहि व्यानं मे पाहि चक्षुर्मे पाहि श्रोत्रं मे पाहि वाचम्मे पिन्व मनो मे जिन्वात्मानम्मे पाहि ज्योतिर्मे यच्छ ॥१७॥

१. गत मन्त्र के 'वार्षिक (आनन्द की वर्षा करनेवाले) व शारद (बुराइयों को शीर्ण करनेवाले)' पति-पत्नी प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि **मे आयुः पाहि**=मेरे जीवन की रक्षा कीजिए। वस्तुतः इस प्रार्थना को करते हुए वे अपनी आयु की रक्षा के लिए पूर्ण प्रयत्न करते हैं। पूर्ण प्रयत्न के साथ ही प्रार्थना शोभा देती है। २. इस जीवन में **प्राणं मे पाहि**=मेरी प्राणशक्ति की रक्षा कीजिए, **अपानं मे पाहि**=मेरी अपान—रोगनिराकरण-शक्ति की रक्षा कीजिए। **व्यानं मे पाहि**=मेरी इस सर्वशरीर-व्यापिनी व्यानशक्ति की रक्षा कीजिए। वस्तुतः 'प्राणापान, व्यान' से रहित जीवन कोई जीवन नहीं है। स्वस्थ जीवन ही जीवन है। ३. इस स्वस्थ जीवन में **मे चक्षुः**=मेरी आँख की **पाहि**=रक्षा कीजिए। मेरी दृष्टिशक्ति विकृत न हो जाए। मेरे जीवन का दृष्टिकोण ठीक बना रहे। इसके ठीक रहने पर ही सब कार्य ठीक होते हैं। ४. **श्रोत्रं मे पाहि**=मेरे श्रोत्र की रक्षा कीजिए। इससे मैं कभी अभद्र न सुनूँ। संसार में ये स्तुति-निन्दा को न सुनेंगे तो न झगड़ेंगे न पतित होंगे। ५. **वाचं मे पिन्व**=मेरी वाणी

को प्रीणित कीजिए। यह औरों का प्रीणन करनेवाली हो, इसमें कटुता न हो। ६. **मे मनः जिन्व**=मुझे मानस शक्ति दीजिए (जिव्=give)। मेरा मन प्रबल हो। ७. **मे आत्मानं पाहि**=मेरी आत्मा की रक्षा कीजिए, अर्थात् मेरी आत्मा, जो आप हैं, उन्हें मैं भूल न जाऊँ, इसीलिए मैं चाहता हूँ कि ८. **मे ज्योतिः यच्छ**=मुझे प्रकाश दीजिए। मुझे वह ज्ञान की ज्योति दीजिए, जिससे मैं आपका दर्शन कर पाऊँ।

भावार्थ—हमारा जीवन दीर्घ, शक्ति-सम्पन्न, शुद्ध इन्द्रियों व मनवाला तथा ज्योतिर्मय हो, जिससे हम प्रभु-दर्शन में समर्थ हों।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—छन्दांसि। **छन्दः**—भुरिगतिजगती। **स्वरः**—निषादः॥

उत्तम इच्छाएँ

मा च्छन्दः प्रमा च्छन्दः प्रतिमा च्छन्दोऽअस्त्रीवयश्छन्दः पङ्क्तिश्छन्दऽउष्णिक् छन्दो बृहती छन्दोऽनुष्टुप् छन्दो विराट् छन्दो गायत्री छन्दस्त्रिष्टुप् छन्दो जगती छन्दः ॥१८॥

१. प्रभु पति-पत्नी से कहते हैं कि तुम्हारी पहली **छन्दः**=इच्छा **मा**=लक्ष्मी की हो। तुम धन को धर्म्य मार्गों से कमाने का ध्यान करो। धन के बिना गृहस्थ व संसार नहीं चल सकता। तुम्हारे ध्येय 'मा+धव' हों, लक्ष्मीपति विष्णु हों, परन्तु धन को सुपथा कमाने का प्रयत्न करो। २. **प्रमा छन्दः**=ज्ञान-प्राप्ति की तुम्हारी कामना हो। कहीं धनोपासना में फँसकर 'लक्ष्मी के वाहन—उल्लू' ही न बन जाना। केवल लक्ष्मी की उपासना उल्लू बनना ही है, अतः धन के साथ ज्ञान को जोड़ने का प्रयत्न करना। ३. इस प्रकार **प्रतिमा छन्दः**=प्रभु की ही प्रतिमा (image) तदनुरूप ही बनने की इच्छा करना। 'धन व ज्ञान' ये हमें प्रभु के समीप पहुँचा देते हैं। ४. इन बातों के लिए **अस्त्रीवयः छन्दः**=(अस्यति क्षिपति, वेञ् तन्तु सन्ताने) उस अन्न की कामना करना जो सब बुराइयों को, रोगों व मानस विकारों को दूर फेंकता है और जीवनतन्तु का सन्तान करते हुए दीर्घ-जीवन का कारण बनता है। ५. इस उत्तम अन्न के प्रयोग से **पङ्क्तिः छन्दः**=पाँचों कर्मेन्द्रियों व पाँचों प्राणों को बढ़ाने की तुम्हारी कामना हो। इन सब पञ्चकों को बड़ा ठीक रखना है। ६. ऊपर के पञ्चकों को ठीक करके **उष्णिक् छन्दः**=(उत् स्निह्यति) उत्कृष्ट स्नेह की तुम्हारी इच्छा हो। तुम्हारा प्रेम हीन वस्तुओं के साथ न हो। ७. **बृहती छन्दः**=(बृहि वृद्धौ) वृद्धि—उन्नति की ही तुम्हारी कामना हो। ८. इसके लिए **अनुष्टुप् छन्दः**=अनुक्षण प्रभु-स्तवन की हम कामना करें। हमें कभी प्रभु-विस्मरण न हो। ९. तभी **विराट् छन्दः**=हम विशेषरूप से दीप्त होने की कामना कर सकेंगे। प्रभु-स्मरण हमारे चेहरों को आनन्द से दीप्त कर देता है। अथवा प्रभु-स्मरण ही हमें **विराट्**=विशिष्टरूप से व्यवस्थित (regulated) जीवनवाला बनाएगा १०. और हम **गायत्री छन्दः**=प्राण-रक्षण की इच्छा कर पाएँगे। व्यवस्थित जीवन में ही प्राण सुरक्षित रहते हैं। ११. इसके लिए तुमने **त्रिष्टुप् छन्दः**=काम, क्रोध व लोभ तीनों को रोकने की कामना करनी है। १२. **जगती छन्दः**=लोकहित में लगे रहने की इच्छा करनी। लोकहित में लगा हुआ व्यक्ति वासनाओं से बचा रहता है और दीर्घ-जीवन पाता है।

भावार्थ—इस मन्त्र का प्रारम्भ 'मा' से है। समाप्ति 'जगती' पर है, अतः ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पत्ति का सर्वोत्तम विनियोग लोकहित ही है।

ऋषिः—विश्वदेवः। देवता—पृथिव्यादयः। छन्दः—आर्षीजगती। स्वरः—निषादः॥

पृथिवी छन्दोऽन्तरिक्षं छन्दो द्यौश्छन्दः समाश्छन्दो नक्षत्राणि छन्दो वाक् छन्दो मनश्छन्दः कृषिश्छन्दो हिरण्यं छन्दो गौश्छन्दोऽजाच्छन्दोऽश्वश्छन्दः॥१९॥

१३. **पृथिवी छन्दः**=तुम्हारी इच्छा शरीर को पूर्ण स्वस्थ करने की हो। इसकी शक्तियों का तुम विस्तार करो। १४. **अन्तरिक्षं छन्दः**=हृदयान्तरिक्ष को निर्मल बनाने की कामना करो। इसके अधिपति बनो, मन को वश में करके चलो, सदा मध्यमार्ग को अपनाओ। यह मन तुम्हें अति में ले-जानेवाला न हो जाए। १५. **द्यौः छन्दः**=मस्तिष्करूप द्युलोक की तुम कामना करो। इसे (दिव्=द्युति) प्रकाशमय बनाने के लिए प्रयत्नशील होओ। १६. **समाः छन्दः**=(समायन्ति ऋतवो यस्यां सा समाः) संवत्सर की तुम्हारी कामना हो, जैसे इसमें सब ऋतुएँ समय पर आती हैं, इसी प्रकार तुममें भी सब कर्त्तव्य समय-समय पर आते रहें। तुम अपने सब कार्यों को समय पर करते रहो अथवा **समाः**=काल जैसे सबके लिए सम है, उसी प्रकार तुम भी सबके लिए सम होओ। तुम्हारे व्यवहार में वैषम्य न हो। १७. **नक्षत्राणि छन्दः**=नक्षत्रों के समान (नक्ष गतौ) सदा क्रियाशीलता की भावना तुममें बनी रहे। 'न क्षिणोति हिनस्ति इति'=तुम नक्षत्रों से हिंसा न करने का पाठ सीखो। ये कल्याण-ही-कल्याण करते हैं, हिंसा नहीं। तुम भी लोगों को थोड़ा-बहुत प्रकाश देनेवाले होओ। १८. **वाक् छन्दः**=तुम्हारी इच्छा निरन्तर ज्ञान की वाणियों को प्राप्त करने की हो। १९. **मनः छन्दः**=मन को निरुद्ध करने की और इस प्रकार मानस-बल को बढ़ाने की तुम्हारी इच्छा हो। २०. इस मनो-निरोध के लिए तुम **कृषिः छन्दः**=कृषि आदि कार्यों की इच्छा करो। कृषि आदि कार्यों में लगा हुआ मन विषयों में जाने से रुका रहेगा। २१. इस कृषि से प्राप्य **हिरण्यं छन्दः**=धन की तुम कामना करो। कृषि से प्राप्य धन वस्तुतः मनुष्य के लिए बड़ा हितरमणीय है, अतः वस्तुतः यही धन 'हिरण्य' है। २२. **गौः छन्दः**=वहाँ खेती में गौओं की तुम इच्छा करो (तत्र गावः)। कृषि करते हुए गौएँ रखने में आर्थिक कष्ट नहीं होता। २३. **अजाः छन्दः**=वहाँ खेती में तू बकरियों को रखने की इच्छा कर तथा २४. **अश्वः छन्दः**=घोड़ों को रखने की तू कामना कर। ये गौ और घोड़े ही तेरे जीवन को उत्कृष्ट बुद्धि व बल से सम्पन्न करेंगे।

भावार्थ—यह मन्त्र 'पृथिवी, अन्तरिक्ष व द्यौ' से प्रारम्भ होता है, शरीर, मन व मस्तिष्क को उत्तम बनाने की कामना हमें करनी ही चाहिए। समाप्ति पर 'गौ-अजा व अश्व' हैं। गौ-दुग्ध हमारे मस्तिष्कों को सुन्दर बनाएगा, अजा दुग्ध हमारे मनों को तथा अश्व हमारे शरीर को सबल बनानेवाले होंगे।

ऋषिः—विश्वदेवः। देवता—अग्न्यादयः। छन्दः—भुरिग्ब्राह्मीत्रिष्टुप्। स्वरः—धैवतः॥

आराध्यदेवता

अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता वसवो देवता रुद्रा देवता ऽऽदित्या देवता मरुतो देवता विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वरुणो देवता॥२०॥

१. **अग्निः देवता**=अग्नि तेरा देवता हो—तू अग्नि से प्रेरणा प्राप्त करनेवाला बन। अग्नि मलों का दहन कर देता है, तू भी सब मलिन वासनाओं को ज्ञानाग्नि में दग्ध

करनेवाला बन। २. **वातः देवता** =वायु तेरा देवता हो। वायु से तू कर्मफल की अपेक्षा न करते हुए कर्त्तव्य बुद्धि से कर्म करनेवाला बन। ३. **सूर्यः देवता**=सूर्य तेरा देवता हो। सूर्य की भाँति तेरी ज्ञान की ज्योति चमके। ४. **चन्द्रमाः देवता**=चन्द्र तेरा देवता हो। तू सदा आह्लादमय, सदा प्रसन्न रहने का प्रयत्न कर। ५. **वसवः देवता**=वसु तेरे देव हों। तू अपने निवास को उत्तम बनानेवाला हो। ६. **रुद्राः देवता** =रुद्र तेरे देव हों। 'रोरूयमाणो द्रवति' तू प्रभु के नामों का उच्चारण करते हुए वासनाओं पर आक्रमण करनेवाला हो। ७. **आदित्याः देवता**=आदित्य तेरे देव हों। इनसे तू सब स्थानों से अच्छाई के ग्रहण का नियम सीख। ये समुद्र में से भी खारेपन को न लेकर शुद्ध जल को लेते हैं, तू सब स्थानों से अच्छाई को ही ले। गुणग्राही बन, अवगुणों को त्याग। ८. **मरुतः देवता**=मरुत तेरे देव हों। 'मरुतः मितराविणः, महद् द्रवन्ति इति–नि० ११। १३' तू मरुतों की भाँति बहुत न बोलनेवाला तथा खूब कार्य करनेवाला बन। अथवा 'मा+रुद्' रोनेवाला न बन। ९. **विश्वेदेवाः देवता**=विश्वेदेव तेरे देवता हों। सब दिव्य गुणों को तू अपनानेवाला बन। १०. **बृहस्पतिः देवता**=ब्रह्मणस्पति तेरा देवता हो। तू ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञान प्राप्त करनेवाला हो। ११. **इन्द्रः देवता** =इन्द्र तेरा देवता हो। तू सब शत्रुओं का विद्रावण करने के हेतु जितेन्द्रिय बन। १२. **वरुणः देवता** =वरुण तेरा देवता हो। वरुण के पाश अनृतवादी को छिन्न करते हैं तथा सत्यवादी को उनमें बाँधते नहीं, अतः तू भी वरुण को देवता माननेवाला सत्यवादी बन। अथवा द्वेष का निवारण करनेवाला बन (वारयति)। इस प्रकार सत्यवादी तथा निर्वैर बनकर तू प्रभु को प्राप्त होनेवाला हो।

भावार्थ–हम अग्नि आदि देवों से प्रेरणा प्राप्त करके देव बनें और अन्त में प्रभु को प्राप्त करनेवाले हों।

ऋषिः–विश्वदेवः। **देवता**–विदुषी। **छन्दः**–निचृदनुष्टुप्। **स्वरः**–गान्धारः॥

मूर्धा-ध्रुवा-धर्त्री

मूर्द्धासि॒ राड् ध्रुवासि॑ धरु॒णा ध॒र्त्र्य॑सि धर॑णी।
आयु॑षे त्वा॒ वर्च॑से त्वा कृ॒ष्यै त्वा॒ क्षेमा॑य त्वा॥२१॥

१. **मूर्धा असि**=(एष वै मूर्धा य एष सूर्यः तपतिः–श० १३।४।१।१३) तू सूर्य की भाँति ज्ञान की दीप्ति से चमकनेवाली है, और अतएव **राट्**=बड़े व्यवस्थित (regulated) जीवनवाली है। ज्ञान हमारे जीवन को व्यवस्थित कर देता है। प्रभु के ज्ञानमय तप से ऋत और सत्य की उत्पत्ति होती है। हमारे जीवन में भी ज्ञान से इस ऋत और सत्य की उत्पत्ति क्यों न होगी? एवं, ज्ञान हमारे जीवनों में व्यवस्था लाता है। उस व्यवस्था के कारण जीवन चमक उठता है (राज् दीप्तौ) २. **ध्रुवा असि**=(इयं पृथिवी एव ध्रुवा–श० २।३।२।४) तू इस पृथिवी के समान ध्रुवा बनती है, मर्यादा में चलनेवाली होती है। स्तुति-निन्दा, हानि-लाभ व जीवन-मरण के प्रलोभन तुझे नीति-मार्ग से विचलित नहीं कर पाते, अतएव तू **धरुणा**=सबका धारण करनेवाली बनती है। ध्रुव पृथिवी जैसे सबका धारण करती है, उसी प्रकार ध्रुव बनकर तू भी सबका धारण करनेवाली होती है। ३. **धर्त्री असि**=(वायुर्वाव धर्त्रम्–श० ८।४।१।२६) तू वायु के समान सबके जीवन का धारण करनेवाली है, गति के द्वारा सब बुराइयों का गन्धन=हिंसन करनेवाली है (वा गतिगन्धनयोः), अतएव **धरणी**=स्वास्थ्य के धरण (रक्षण) से दीर्घायुष्य का धारण करनेवाली बनती है। ५. मैं **त्वा**=तेरा सखित्व **आयुषे**=दीर्घजीवन के लिए स्वीकार करता हूँ। **त्वा**=तेरा सखित्व **वर्चसे**=वर्चस के लिए

होता है। **कृष्यै त्वा**=मैं तेरा सखा बनता हूँ, जिससे हम मिलकर अपने इस कृषिकर्म को उन्नत कर पाएँ और इस प्रकार **क्षेमाय त्वा**=मैं तुझे योगक्षेम के साधन के लिए अपनाता हूँ। वस्तुतः आदर्श जीवन वही है जिसमें लोग श्रमपूर्वक योगक्षेम को सिद्ध करते हैं और इस प्रकार अपने जीवन को दीर्घ व शक्तिशाली बना पाते हैं।

भावार्थ—गृहपत्नी ज्ञान द्वारा सूर्य की भाँति चमके, पृथिवी के समान धारण करनेवाली हो और वायु के समान शरीर के स्वास्थ्य को सुरक्षित करनेवाली हो। वायु बनकर आयु का स्थापन करे।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—विदुषी। **छन्दः**—निचृदुष्णिक्। **स्वरः**—ऋषभः॥

यन्त्री-यमनी

यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवासि धरित्री।
इषे त्वोर्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा॥२२॥

१. तू **यन्त्री**=अपने जीवन पर पूर्ण नियन्त्रण रखनेवाली है और इसी का परिणाम है कि तू **राट्**=चमकती है। जैसे नियमित गति के कारण सूर्य चमकता है, उसी प्रकार नियमित जीवनवाला व्यक्ति भी चमकता है। २. और वस्तुतः **यन्त्री असि**=तू अपने जीवन को नियन्त्रण में रखनेवाली है, अतएव **यमनी**=सबको नियमित जीवनवाला बनाती है। सबको नियम में वही रख सकता है जो स्वयं अपने को नियमित बनाये। ३. **ध्रुवा असि**= पृथिवी के समान तू ध्रुवा है (ध्रुवा=पृथिवी—श० १।३।२।४), अतएव **धरित्री**=सबका धारण व पोषण करनेवाली है। स्वयं अध्रुव जीवनवाला औरों का धारण नहीं कर सकता। ४. पत्नी कहती है कि मैं **त्वा**=तुझे अपना जीवन-सखा बनाती हूँ, **इषे**=अन्न-प्राप्ति के लिए। हमारे घर में 'अन्न की कमी न होने देना' यह आपका पहला कर्त्तव्य है। मैं **ऊर्जे त्वा**= आपको वरती हूँ, जिससे हमारा जीवन बल व प्राणशक्ति-सम्पन्न बने। 'ऊर्ग् वै रसः'=हमारे घर में उस गोरस व दूध की कमी न हो जो हम सबके जीवनों को बल व प्राणशक्ति- सम्पन्न बनाएगा। **रय्यै त्वा**=मैंने आपका वरण इसलिए किया है कि आप घर के कार्य- सञ्चालन के लिए पर्याप्त धन का अर्जन करनेवाले होंगे। **पोषाय त्वा**=उचित धनार्जन के द्वारा सबका पोषण करने के लिए मैंने आपका वरण किया है।

भावार्थ—पत्नी को चाहिए कि अपने जीवन को नियमित बनाकर घर में सबके जीवन को व्यवस्थित करनेवाली हो। पति ने अन्न, रस, धन व पोषण का ध्यान करना है। इस प्रकार अपने-अपने कर्त्तव्य को करने से इनका यह लोक अच्छा बनेगा।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—यज्ञः। **छन्दः**—भुरिग्ब्राह्मीपङ्क्तिः [क], भुरिगतिजगती [ख]। **स्वरः**—पञ्चमः [क], निषादः [ख]॥

आशुः, चतुष्टोमः

[क]आशुस्त्रिवृद्ब्रान्तः पञ्चदशो व्योमा सप्तदशो धरुणोऽएकविꣳशः प्रतूर्तिरष्टादशस्तपो नवदशोऽभीवर्त्तः सविꣳशो वर्चो [ख] द्राविꣳशः सम्भरणस्त्रयोविꣳशो योनिश्चतुर्विꣳशो [ख]गर्भाः पञ्चविꣳशऽओजस्विणवः क्रतुरेकत्रिꣳशः प्रतिष्ठा त्रयस्त्रिꣳशो ब्रध्नस्य विष्टपं चतुस्त्रिꣳशो नाकः षट्त्रिꣳशो विवर्त्तोऽष्टाचत्वारिꣳशो धर्त्रं चतुष्टोमः॥२३॥

१. **आशुः** (अश्नुते कर्मसु)=तू सदा कर्मों में व्याप्त होनेवाला बनता है और आलस्य को छोड़कर शीघ्रता से कार्यों को करनेवाला होता है। कर्मों में व्याप्त होते हुए तू **त्रिवृत्**=(त्रिषु

वर्त्तते) 'धर्म, अर्थ, काम' तीनों पुरुषार्थों में समरूप से वर्त्तनेवाला होता है। केवल 'धर्म' को अपनाकर, जटाधारी बन, अग्नि में आहुति ही नहीं देता रहता। केवल 'अर्थ' को अपनाकर 'मनी-मेकिंग-मशीन'=धनार्जन-यन्त्र ही नहीं हो जाता और केवल 'काम' को ध्येय बनाकर निकम्मा नहीं हो जाता। २. **भान्तः**='भा कान्तिरेव अन्तःस्वरूपं यस्य' तू कान्त रूपवाले चन्द्रमा के समान बनता है, सदा आह्लादमय तेरा रूप होता है (चदि आह्लादे) और **पञ्चदशः**=पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों व पाँचों प्राणों को उत्तम बनाकर पन्द्रहवाला बनता है। ३. **व्योमा**='विविधम् अवति'=तू **वी**=प्रकृति **ओम्**=परमात्मा व **अन्**=जीव (वी+ओम्+ अन्=व्योमन्) इन सभी का अपने में समन्वय करता है और सचमुच इन विविध तत्त्वों का अपने में रक्षण करता है। प्रकृति के अवन से तेरा भौतिक (material) अंश ठीक बनता है, जीव के अवन से तेरा सामाजिक (social) अंश ठीक होता है और प्रभु के अवन से तेरा अध्यात्म (spiritual) अंश ठीक होता है। इस प्रकार तू **सप्तदशः** ='पाँच ज्ञानेन्द्रिय+पाँच कर्मेन्द्रिय+पाँच प्राण+मन व बुद्धि' इन सत्रह तत्त्वों को ठीक रखनेवाला होता है। ४. **धरुणः**=(धरुण आदित्यः—श० ८।१।१।१२) आदित्य के समान प्रकाश आदि उत्तम तत्त्वों का आदान व धारण करनेवाला बनता है। इसी से तू **एकविंशः**=शरीर के धारण करनेवाले २१ तत्त्वोंवाला होता है (ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः) ५. **प्रतूर्तिः**=(प्रकृष्टा तूर्तिः त्वरा यस्य) जिसके जीवन में शीघ्रता है व आलस्य का अभाव है, ऐसा तू **अष्टादशः**=अठारह तत्त्वोंवाले इस सूक्ष्म शरीर का अधिष्ठाता **विराट्**=चमकनेवाला आत्मा बनेगा। ६. **तपः**=यदि तू तपस्या की प्रतिमूर्त्ति, खूब तपस्वी जीवनवाला बनेगा तो **नवदशः**=शरीर के नौ द्वारों (अष्टाचक्रा नवद्वारा०) तथा दश प्राणों का अपनानेवाला होगा। तपस्या तेरे इन इन्द्रिय-द्वारों व प्राणों को स्वस्थ व शक्ति-सम्पन्न बनाएगी। ७. **अभीवर्त्तः**=(अभि-वर्तते) उस प्रभु की ओर जानेवाला होगा तो **सविंशः**=तू बीस के साथ होगा। ये शरीर की दस इन्द्रियाँ व दस प्राण तेरे अधीन होंगे, ये तेरा साथ न छोड़नेवाले होंगे। प्रभु की ओर झुकाव से—प्रातः-सायं प्रभु-स्मरण से प्रभु की शक्ति हमारी इन्द्रियों व प्राणों को सशक्त बनाएगी। ८. **वर्चः**=प्रभु-स्मरणवाला तू तब वर्चस्वी=वर्चस् का पुतला ही बन जाएगा तो **द्वाविंशः**=दस इन्द्रियों, दस प्राणों व मन और बुद्धि को पूर्ण स्वस्थ बनानेवाला होगा। ९. **सम्भरणः**=अपने में शक्ति का सम्यक् भरण करनेवाला तथा शक्ति के द्वारा सबका सम्यक् भरण करनेवाला तू **त्रयोविंशः**=दस इन्द्रियाँ, दस प्राण, मन-बुद्धि तथा चित्तवाला होगा। तेरे ये तेईस-के-तेईस तत्त्व ठीक होंगे। १०. **योनिः**=(यु=मिश्रण अमिश्रण) सब अच्छाइयों को अपने से संपृक्त व बुराइयों को असंपृक्त करनेवाला तू सर्वस्थानभूतः=सबको आश्रय देनेवाला **चतुर्विंशः**=चौबीस गुणोंवाला होगा। दर्शन में चौबीस ही गुण हैं, तथा मोक्ष में इन्हीं चौबीस शक्तियों से जीव सुख भोगता है। ११. **गर्भः**=(व्यत्ययेन बहुत्वम्) (गिरति अनर्थान् इति गर्भः)=सब अनर्थों को तू नष्ट करनेवाला हुआ है, इसी से तू **पञ्चविंशः**=चौबीस गुणों वा शक्तियों का अधिष्ठाता पच्चीसवाँ पुरुष हुआ है। १२. **ओजः**=तू ओजस्वी बना है (वज्रो वा ओजः) अनर्थों को दूर करनेवाले वज्र के समान तू हुआ है और इसी से चौबीस गुण तथा मन-बुद्धि व आत्म-तत्त्ववाला **त्रिणवः**=३ गुणा ९ सताईस तत्त्वोंवाला तू है। १३. **ऋतुः**=ओजस्वी बने रहने के लिए तू ऋतुमय जीवनवाला है, सदा यज्ञशील है और इसी से **एकत्रिंशः**=चौबीस गुणों तथा सात रत्नोंवाला (दमे-दमे सप्तरत्नं दधानम्) हुआ है। १४. **प्रतिष्ठा**=यज्ञों के द्वारा तू प्रभु में प्रतिष्ठित हुआ है और **त्रयस्त्रिंशः**=सब तेतीस देवोंवाला बना है। १५. **ब्रध्नस्य विष्टपम्**=(असौ वा आदित्यो ब्रध्नः—श० ८।४।१।२३) ब्रह्मरूप

आधारवाला होकर तू 'आदित्यलोक' वाला हो गया है (ब्रध्नस्य विष्टपं=स्वराज्यस्थापकम्) तू स्वतन्त्र, स्वराट् हो गया है। तुझमें किसी प्रकार की परतन्त्रता नहीं रह गई। इसी से **चतुस्त्रिंशः**=३३ देव व ३४ वें महादेववाला तू है। १६. **नाकः**=अब स्वतन्त्र होकर—स्वराट् बनकर (सर्वमात्मवशं सुखम्) तू दुःख के लवलेश से भी रहित स्वर्ग में पहुँच गया है (न अकं दुखं यत्र) और **षट्त्रिंशः**=तू तेतीस देवों तथा धर्मार्थ-कामरूप तीनों पुरुषार्थोंवाला हुआ है। १७. **विवर्त्तः**=आज तू विशिष्ट ही वर्त्तनवाला बना है, तेरे सब कर्म दिव्य हो गये हैं और **अष्टाचत्वारिंशः**=२७ भागों में बटी हुई दैवी सम्पत् तथा शरीर की २१ शक्तियों को अपने में धारण करनेवाला बना है। भौतिक व आध्यात्मिक दोनों ही दृष्टियों से तेरा जीवन ऊँचा बना है। १८. **धर्त्रम्**=(वायुर्वाव धर्त्रम्) विशिष्ट क्रियाओंवाला बनकर तू वायु की भाँति सबका धारण करनेवाला है। तेरी गति स्वाभाविक रूप से है और तू सभी का हित करने में प्रवृत्त है, तू सभी का धारण कर रहा है और **चतुष्टोमः**=(चतुर्भिः दिग्भिः स्तूयते) चारों दिशाओं में तेरा स्तवन-ही-स्तवन है, तेरी सर्वत्र कीर्ति हो रही है। अथवा चारों वेदज्ञानों के द्वारा तेरा स्तवन चल रहा है।

भावार्थ—हमारा जीवन, ऊपर की अठारह बातों को धारण करके, पूर्ण यज्ञिय बन जाए, हम 'आशु' से जीवन को प्रारम्भ करें, शीघ्रता से कार्यों को करनेवाले बनें और 'चतुष्टोम' पर हमारे जीवन का अन्त हो। चारों वेदों से हमारा प्रभु-स्तवन चल रहा हो।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—मेधाविनः। **छन्दः**—भुरिग्विकृतिः। **स्वरः**—मध्यमः॥

ब्रध्न+क्षत्र+जनित्र+वात

अग्नेर्भागोऽसि दीक्षायाऽआधिपत्यं ब्रह्म स्पृतं त्रिवृत्स्तोमऽइन्द्रस्य भागोऽसि विष्णोराधिपत्यं क्षत्रꣳस्पृतं पञ्चदश स्तोमो नृचक्षसां भागोऽसि धातुराधिपत्यं जनित्रꣳस्पृतꣳसप्तदश स्तोमो मित्रस्य भागोऽसि वरुणस्याधिपत्यं दिवो वृष्टिर्वातं स्पृतऽएकविꣳश स्तोमः॥२४॥

१. **अग्नेः**=अग्नि का **भागः** (भज सेवायाम्)=भजन करनेवाला, अतएव अग्नि का ही अंश—छोटारूप तू **असि**=है। 'नाधः शिखा याति कदाचिदेव'=अग्नि की ज्वाला कभी नीचे की ओर नहीं जाती। इसी प्रकार अग्नि का उपासक भी कभी नीचे की ओर झुकाववाला नहीं होता। **दीक्षाया आधिपत्यम्**=(वाग्वै दीक्षा—श० ८।४।२।३) वाणी पर इसका आधिपत्य होता है। वस्तुतः 'अग्निर्वाग् भूत्वा०' अग्नि ही वाणी का रूप धारण करके मुख में प्रवेश करती है, अतः यह अग्नि की उपासना करता हुआ वाणी का अधिपति बनता है। वाणी का अधिपति बनकर **ब्रह्म स्पृतम्**=(स्पृ प्रीतिरक्षाप्राणनेषु) इसने ज्ञान के साथ प्रीति की है, ज्ञान की रक्षा की है तथा ज्ञान को ही अपना जीवन बनाने का प्रयत्न किया है। **त्रिवृत्स्तोमः** =ज्ञान प्राप्त करके यह (त्रिषु वर्त्तते) 'धर्मार्थ, काम' तीनों में वर्त्तनेवाला बना है और यह धर्म, अर्थ, काम का सम सेवन ही **स्तोमः**=इसकी स्तुति हुई है। २. **इन्द्रस्य**=इन्द्र का **भागः असि**=तू भजन व उपासन करनेवाला हुआ है। इन्द्रियों का अधिष्ठाता पूर्ण जितेन्द्रिय बनकर **विष्णोः आधिपत्यम्**=तुझे व्यापकता, उदारता व यज्ञिय वृत्ति का आधिपत्य प्राप्त हुआ है। तूने इस यज्ञिय भावना के द्वारा विषयासक्ति से बचकर **क्षत्रं स्पृतम्**=बल की रक्षा की है—बल को प्रिय वस्तु बनाया है सबल जीवन जीने का प्रयत्न किया है और इस प्रकार **पञ्चदशः**=पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों व पाँच प्राणों को तूने स्वस्थ किया है। उन्हें

अपनी सम्पत्ति बनाया है और यही तेरा **स्तोमः**=स्तवन हो गया है। इन्द्रियों व प्राणों का ठीक रखना वस्तुतः प्रभु-स्तवन है। ३. **नृचक्षसाम्**=(नॄन् चक्षते—look after men=देवाः) मनुष्यों का रक्षण करनेवाले देवों का तू **भागः असि**=भजन करनेवाला है। इस भजन से तू उनका भाग—अंश वा छोटा रूप बना है। **धातुराधिपत्यम्**=तुझे धारण करनेवाले का आधिपत्य प्राप्त हुआ है। धारक देवों का उपासक धारक क्यों न बनेगा? **जनित्रं स्पृतम्**=धारक बनकर तूने (विड् वै जनित्रम्—श० ८।४।२।५) प्रजा से प्रेम किया है, प्रजा की रक्षा की है और प्रजाओं को ही अपना प्राण बनाया है। **सप्तदश स्तोमः**=पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पाँच प्राण तथा मन और बुद्धि ये सत्रह तत्त्व तेरा स्तवन बने हैं। इनको ठीक रखना ही तेरा प्रभु-स्तवन बन गया है। ४. **मित्रस्य**=प्राण का व स्नेह की देवता का तू **भागः असि**=भजन करनेवाला है। वस्तुतः प्राणशक्ति के ठीक होने पर ही स्नेह की प्रवृत्ति होती है। इनमें कार्यकारण भाव है—प्राण की कमी स्नेहवृत्ति की न्यूनता का कारण बनती है। इस स्नेह की वृत्ति से तुझे **वरुणस्याधिपत्यम्**=अपान का व द्वेष-निवारण का आधिपत्य प्राप्त होता है। 'अपान' से दोषों का दूरीकरण होता है और मनुष्य निर्द्वेष बनता है। इस स्नेह व निर्द्वेष के होने पर **दिवः वृष्टिः**=मूर्धा में (मस्तिष्क में) होनेवाली आनन्द की वर्षा होती है अथवा प्रकाश की वृष्टि होती है, जीवन वस्तुतः आनन्दमय बनता है। इस उच्च स्थिति को स्थिर रखने के लिए तूने **वातः स्पृतः**=वायु की, निरन्तर क्रियाशीलता की रक्षा की है, क्रियाशीलता से ही प्रेम किया है तथा क्रियाशीलता से ही जीने का प्रयत्न किया है। क्रियाशीलता से **एकविंशः**=शरीर की इक्कीस शक्तियोंवाला तू होता है और यही तेरा **स्तोमः**=प्रभु-स्तवन है।

भावार्थ—अग्नि के उपासक बनकर हम ज्ञान की रक्षा करें। इन्द्र के उपासक बनकर हम बल की रक्षा करें। देवों के उपासक बनकर प्रजाओं की रक्षा करें। मित्र—स्नेह की देवता के उपासक बनकर हम क्रियाशीलता की रक्षा करें। हम ज्ञानी, सबल, प्रजारक्षक व क्रियाशील बनें।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—वस्वादयो लिङ्गोक्ता। **छन्दः**—निचृदभिकृतिः। **स्वरः**—ऋषभः॥

चतुष्पात्+गर्भ+ओजस्+समीचीर्दिश

वसूनां भागोऽसि रुद्राणामाधिपत्यं चतुष्पात् स्पृतं चतुर्विꣳश स्तोमोऽआदित्यानां भागोऽसि मरुतामाधिपत्यं गर्भा स्पृताः पञ्चविꣳश स्तोमोऽदित्यै भागोऽसि पूष्णऽआधिपत्यमोजः स्पृतं त्रिणव स्तोमो देवस्य सवितुर्भागोऽसि बृहस्पतेराधिपत्यꣳसमीचीर्दिश स्पृताश्चतुष्टोम स्तोमः॥२५॥

१. तू **वसूनाम्**=वसुओं की **भागः**=उपासना करनेवाला है, निवास के लिए आवश्यक सब देवों का सेवन करनेवाला है और तुझे **रुद्राणाम्**=रुद्रों का **आधिपत्यम्**=स्वामित्व प्राप्त होता है। दस प्राण और आत्मा का स्वास्थ्य तुझे प्राप्त होता है। इस स्वास्थ्य को प्राप्त करके **चतुष्पात् स्पृतम्**=तूने 'स्वाध्याय+यज्ञ+तप+दान' रूप चतुष्पात् धर्म से प्रेम किया है, इसका रक्षण किया है। इस धर्म को जीने का प्रयत्न किया है और **चतुर्विंशः**=चौबीस-के-चौबीस गुणों की प्राप्ति ही **स्तोमः**=तेरा प्रभु-स्तवन हो गया है। २. **आदित्यानाम्**=तू आदित्यों का **भागः**=उपासक हुआ है। आदित्यों की आदानवृत्ति को धारण करके तूने दिव्य गुणों का आदान किया है और इससे **मरुतामाधिपत्यम्**=तुझे मरुतों का आधिपत्य प्राप्त हुआ है। (मरुतः=ऋत्विजः० २।१८—नि०) ऋत्विजों का तू अधिपति बना है—ऋतु-ऋतु में, अर्थात् सदा यज्ञशीलों का तू अधिपति हुआ है। उन मरुतों का जोकि (मितराविणः, महद् द्रवन्तीति

वा–नि० ११।१३) बड़ा परिमित बोलते हैं और खूब गतिशील होते हैं अथवा वासनाओं पर खूब आक्रमण करनेवाले होते हैं। इसी से तूने **गर्भाः स्पृताः**=(इन्द्रियं वै गर्भः–तै० १।८।३।३) अपनी इन्द्रियों की रक्षा की है, इन्द्रिय-शक्तियों को नष्ट नहीं होने दिया है। **पञ्चविंशः स्तोमः** =इन्द्रियों को अनर्थों से बचाकर चौबीस गुणों के सम्पादन करनेवाला पच्चीसवाँ तू पुरुष हुआ है, पच्चीसवाँ बनना ही तेरा प्रभु-स्तवन है। ३. **आदित्यै भागः असि**=अदीना देवमाता का अथवा अखण्डन (दो अवखण्डने) की देवता का–पूर्ण स्वास्थ्य का–तू सेवन करनेवाला हुआ है। **पूष्णः आधिपत्यम्**=तूने पूषा का आधिपत्य प्राप्त किया है, अर्थात् सर्वोत्तम पोषण करनेवाला बना है। इस पोषण के द्वारा **ओजः स्पृतम्**=तूने ओजस्विता से प्रेम किया है, ओजस्विता का रक्षण किया है। वस्तुतः ओजस्वी जीवन जीने का ही ध्यान किया है। **त्रिणवः स्तोमः**=ओजस्विता से तीन गुणा नौ, अर्थात् चौबीस गुणों तथा मन, बुद्धि व आत्मतत्त्व का सम्पादन ही तेरा स्तवन बन गया है। इन २७ को प्राप्त करना ही तेरी स्तुति है। ४. **सवितुः देवस्य भागः असि**=उस उत्पादक देव का तू उपासक बना है। इसकी उपासना से तुझे **बृहस्पतेः आधिपत्यम्** =ब्रह्मणस्पति का आधिपत्य प्राप्त हुआ है। तू ऊँचे-से-ऊँचा ज्ञानी बना है। इस उत्कृष्ट ज्ञान को प्राप्त करके **समीचीः दिशः स्पृताः**= (सम्+अञ्च) उत्तम गतिवाली दिशाओं से तूने प्रेम किया है, उनसे प्राप्त होनेवाले 'आगे बढ़ना', दाक्षिण्य प्राप्त करना, प्रत्याहार व उन्नति और ध्रुव तथा उच्चस्थिति के उपदेशों को तूने अपने जीवन में घटाया है और इस प्रकार इन वेदोक्त उपदेशों का रक्षण किया है। **चतुः स्तोमः**=वेदों का समूह जिनमें सब उपदेश दिये गये हैं वे वेद ही तेरे **स्तोमः**=स्तवन हुए हैं।

भावार्थ–हम उत्तम निवासवाले बनकर चतुष्पात् धर्म (स्वाध्याय, यज्ञ, तप व दान) की रक्षा करें। गुणों का आदान करनेवाले बनकर हम अपनी सब इन्द्रियों की अनर्थों से रक्षा करें। अदिति (पूर्ण स्वास्थ्य) के उपासक बनकर हम ओजस्वी बनें और उत्पादक देव की उपासना करते हुए दिशाओं से दिये गये उपदेशों को जीवन में अनूदित करें।

ऋषिः–विश्वदेवः। **देवता**–ऋभवः। **छन्दः**–निचृदतिजगती। **स्वरः**–निषादः॥

प्रजाः-भूतं यव व ऋभू की उपासना

यवानां भागोऽस्ययवानामाधिपत्यं प्रजा स्पृताश्चतुश्चत्वारिꣳश स्तोमऽऋभूणां भागोऽसि विश्वेषां देवानामाधिपत्यं भूतꣳस्पृतं त्रयस्त्रिꣳश स्तोमः॥२६॥

१. **यवानाम्**=(पूर्वपक्षा वै यवा अपरपक्षा अयवाः–श० ८।४।२।११) तू चन्द्रमा की एक-एक कला को जोड़ते चलनेवाले शुक्लपक्षों का **भागः असि**=उपासक हुआ है। तू भी एक-एक कला को ग्रहण करते-करते १६ कलाओं से पूर्ण हुआ है। तूने **अयवानाम्**=अपरपक्षों का **आधिपत्यम्**=स्वामित्व प्राप्त किया है। इस अपरपक्ष में जैसे एक-एक कला न्यून व पृथक् होती चलती है, तूने भी एक-एक अवगुण व वासना को अपने से पृथक् किया है और सब अवगुणों को समाप्त करके अमावास्या=उस प्रभु के साथ रहने की स्थिति को पाया है (अमा=साथ, वस=रहना)। इस प्रकार तूने **प्रजाः स्पृताः**=सब प्रकृष्ट विकासों से प्रेम किया है, उनकी रक्षा की है, उन्हें अपने जीवन का अङ्ग बनाने का प्रयत्न किया है। **चतुः चत्वारिंशः स्तोमः**=इस प्रकार (आचत्वारिंशतः सम्पूर्णता, शं मे चतुर्भ्यो अङ्गेभ्यः) चारों अङ्गों में चालीस वर्ष तक चलनेवाला विकास ही तेरा स्तवन हो गया है। तूने 'मुख, बाहू, उदर व पाद' सभी अङ्गों का चालीस वर्ष तक चलनेवाला विकास किया है और इस विकास द्वारा ही प्रभु की स्तुति की है। २. **ऋभूणां भागः असि** (उरु भान्ति–ऋतेन भान्ति–

ऋतेन भवन्ति—नि० ११।१६ ऋभवो: मेधाविनः—नि० ३।१५) तूने ज्ञान से दीप्त होनेवाले, ऋत से चमकनेवाले अथवा सदा ऋत के साथ रहनेवाले मेधावियों का उपासन किया है। इस उपासन का ही परिणाम है कि **विश्वेषां देवानामाधिपत्यम्**=सब देवों का तू अधिपति बना है। **भूतं स्मृतम्**=(भूतं=जन्म—नि० ३।१३) इस प्रकार तूने अपने जीवन की रक्षा की है और **त्रयस्त्रिंशः स्तोमः**=यह तेतीस देवों का धारण ही तेरा स्तवन हो गया है। सच्चा प्रभु-स्तवन यही होता है कि हम सब देवों को अपनाएँ। देवों को अपनाकर ही हम महादेव के समीप पहुँचेंगे।

भावार्थ—शुक्लपक्ष हमें गुण—कला वृद्धि का उपदेश दे रहा है और कृष्णापक्ष एक-एक करके अवगुणों को समाप्त करके प्रभु के समीप पहुँचने का संकेत करता है, अतः हम ज्ञानदीप्त, ऋतमय जीवनवाले मेधावियों के उपासक बनकर जीवन में सब दिव्य गुणों को धारण करनेवाले बनें।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—ऋतवः। **छन्दः**—भुरिगतिजगती [क], भुरिग्ब्राह्मीबृहती [ख]। **स्वरः**—निषादः [क], मध्यमः [ख]॥

सह+सहस्य=हेमन्त

[क]सहश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतूऽअग्नेरन्तःश्लेषोऽसि कल्पेतां द्यावापृथिवी कल्पन्तामापऽओषधयः कल्पन्तामग्नयः पृथङ् मम ज्यैष्ठ्याय सव्रताः। [ख]येऽअग्नयः समनसोऽन्तरा द्यावापृथिवीऽइमे। हैमन्तिकावृतूऽअभिकल्पमानाऽइन्द्रमिव देवाऽअभिसंविशन्तु तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवे सीदतम्॥२७॥

१. **सहः च**=तुम सहन शक्तिवाले बनो। संसार में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सहनशक्ति ही है। स्थित-प्रज्ञ व्यक्ति मानापमान में तुल्य रहता है, स्तुति-निन्दा उसे विचलित नहीं करती। **सहस्यः च**=तुम बल में उत्तम बनो। 'सह' मार्गशीर्ष मास का नाम है। जो व्यक्ति (मृग अन्वेषणे) आत्मान्वेषण करनेवालों का मूर्धन्य होगा वह अपने दोषों को जानता हुआ वस्तुतः सहनशील होगा। उसे अपनी निर्दोषता का अभिमान न होगा। 'सहस्य' पौष है—सबल व्यक्ति अपने में गुणों का पोषण करता है। २. इस प्रकार सहनशील व सबल बनकर आप दोनों (पति-पत्नी) **हैमन्तिकौ**=(हि गतौ वृद्धौ च) गतिशील व वृद्धिशील बनों। ३. **ऋतू**=आप दोनों बड़ी व्यवस्थित गतिवाले बनों। ऋतुओं की भाँति आपका जीवन व्यवस्थित हो। ४. **अग्नेः अन्तः श्लेषः असि**=अपने अन्दर हृदयाकाश में उस प्रभु का आलिङ्गन करनेवाले बनों और इस प्रकार कामना करो कि ५. **द्यावापृथिवी कल्पेताम्**=मेरा मस्तिष्क व शरीर शक्तिशाली बने। **आपः ओषधयः कल्पन्ताम्**=जल व ओषधियाँ मुझे शक्तिशाली बनाएँ। ६. **अग्नयः**=माता-पिता व आचार्यरूप अग्नियाँ **सव्रताः**=समान व्रतवाले होकर—मेरी उन्नति के साधनरूप एक लक्ष्यवाले होकर—**मम ज्यैष्ठ्याय**=मेरी ज्येष्ठता—उन्नति के लिए **पृथक्**=अलग-अलग **कल्पन्ताम्**=समर्थ हों। पाँच वर्ष तक माता मेरे चरित्र के निर्माण के लिए यत्नशील हो। आठ वर्ष तक पिता मुझे शिष्टाचार सम्पन्न बनाएँ और पच्चीस वर्ष तक आचार्य मुझे ज्ञान से व्याप्त कर दें। ७. मेरे माता-पिता आचार्य ही क्या, सभी **अग्नयः**=पुरोहित, उपदेशक व विद्वान् आदि **ये**=जो **इमे द्यावापृथिवी अन्तरा**=इन द्युलोक व पृथिवीलोक के बीच में हैं, वे सब **समनसः**=समान मनवाले हों कि आगे आनेवाली इस पीढ़ी के जीवन को खूब सुन्दर बनाना है। ८. **हैमन्तिकौ ऋतू**=पूर्वोक्त प्रकार से माता-पिता व आचार्य से शिक्षित होकर गृहस्थ में प्रवेश करनेवाले पति-पत्नी क्रियाशील व वृद्धिशील हों। निरन्तर गतिवाले और सदा आगे बढ़नेवाले हों। **ऋतू**=ऋतुओं के अनुसार व्यवस्थित गतिवाले हों।

अभिकल्पमाना=अपनी ऐहिक व पारलौकिक उन्नति को सिद्ध करनेवाले हों। बाह्य व अन्तःशक्ति का साधन करें। इहलोक के अभ्युदय व परलोक के निःश्रेयसवाले हों। ९. **इन्द्रम् इव**=इन्द्र के समान—पूर्ण जितेन्द्रिय के समान बने हुए तुझमें **देवाः**=सब दिव्य गुण **अभिसंविशन्तु**=प्रविष्ट हों। १०. इसी उद्देश्य से **तया देवताया**=उस महती देवता के साथ सम्पर्क से **अङ्गिरस्वत्**=अङ्ग-अङ्ग में रसवाले होकर **ध्रुवे सीदतम्**=इस घर में ध्रुव होकर स्थित होओ। घर ही तुम्हारा स्थान हो, न कि क्लब।

भावार्थ—सहनशक्ति व बल का सम्पादन करके हम गतिशील व प्रगतिशील बनें। हमारा जीवन व्यवस्थित हो। हम जलों व ओषधियों का ही सेवन करें। यह ध्यान रक्खें कि 'मांस' न खाएँ, क्योंकि वह तो मुझे ही खा जाएगा। प्रभु-उपासना करते हुए हम घर में ध्रुव निवासवाले हों, वहाँ हमारा जीवन बड़ा मर्यादित हो।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—ईश्वरः। **छन्दः**—निचृद्विकृतिः। **स्वरः**—मध्यमः॥

एक-तीन-पाँच-सात

एकयास्तुवत प्रजाऽअधीयन्त प्रजापतिरधिपतिरासीत्तिसृभिरस्तुवत ब्रह्मासृज्यत ब्रह्मणस्पतिरधिपतिरासीत् पञ्चभिरस्तुवत भूतान्यसृज्यन्त भूतानां पतिरधिपतिरासीत् सप्तभिरस्तुवत सप्त ऋषयोऽसृज्यन्त धाताधिपतिरासीत्॥२८॥

१. **प्रजाः अधीयन्त**=सब प्रजाएँ उस-उस शरीर में स्थापित की गईं। आत्माएँ पैदा तो कभी नहीं होतीं—ये सनातन हैं, परन्तु जब वे प्रभु कर्मव्यवस्थानुसार किसी शरीर में इनका स्थापन करते हैं तब यह स्थापन ही उनका जन्म व उत्पादन हो जाता है। ये शरीर में स्थापित जीव **एकयास्तुवत**=(वाग् वा एका वाचैव तदस्तुवत—श० ८।४।३।३) इस मुख्य वाणी से (एक=मुख्य) उस प्रभु का स्तवन करें कि **प्रजापतिः अधिपतिः आसीत्**=वह सब प्रजाओं का रक्षक ही सब प्रजाओं का अधिपति है। प्रजाओं का रक्षक होने से वह 'प्रजापति' नामवाला है। उस प्रभु ने ही हमें यह 'अद्भुत वाणी' प्राप्त करायी है। मनुष्य को ही व्यक्त वाणी दी गई है। अन्य सब प्राणियों की वाणी अव्यक्त है। २. प्रजाओं को इस प्रकार शरीरबद्ध करके प्रभु ने उन्हें ज्ञान दिया, जिसके अनुसार उन्हें अपना जीवन चलाना है। **ब्रह्म असृज्यत**=वेदज्ञान उत्पन्न किया गया। यह वेदज्ञान 'ऋग्-यजुः-साम' मन्त्रों में विभक्त था। ऋङ्मन्त्रों का सार 'तत्सवितुर्वरेण्यम्' हुआ, यजुर्मन्त्रों का सार 'भर्गो देवस्य धीमहि' तथा साममन्त्रों का सार 'धियो यो नः प्रचोदयात्' हुआ। यही त्रिचरणा गायत्री थी। इस गायत्री के तीनों चरणों का सार 'भूः, भुवः, स्वः' था, और इन तीन महाव्यहृतियों का सार 'अ, उ, म्'—ये ओम् की तीन मात्राएँ हुईं। **तिसृभिः**=इन तीनों मात्राओं से ही **अस्तुवत**=प्रजाएँ उस प्रभु का स्तवन करें कि **ब्रह्मणस्पतिः अधिपतिः आसीत्**=यह वेदज्ञान का रक्षक प्रभु ही हम सबका अधिपति है। उसने ही इस त्रिविध मन्त्रों में विभक्त वेदज्ञान को हमारे रक्षण के लिए दिया है। वह 'ब्रह्मणस्पति' नामवाला है। ३. प्रभु के इस वेदज्ञान से ज्ञेय, **भूतानि**=पृथिवी, जल, तेज, वायु व आकाश ये पाँच भूत **असृज्यन्त**=उत्पन्न किये गये। इन पञ्चभूतों के गन्ध, रस, रूप, स्पर्श व शब्दरूप पाँच गुणों के ज्ञान प्राप्त करानेवाले **पञ्चभिः**=घ्राण, रसना, चक्षु, त्वक् व श्रोत्ररूप पाँच ज्ञानेन्द्रियों से प्रजाएँ उस प्रभु का **अस्तुवत**=स्तवन करें कि इन सब **भूतानां पतिः**=पाँच भूतों का रक्षक वह प्रभु ही **अधिपतिः आसीत्**=हमारा अधिपति है। वह अधिपति ही 'भूतानां पति' नामवाला हो गया है। ४. इन

भूतों के ज्ञान के लिए साधनरूप से, कारणरूप से—**सप्त ऋषयः**=दो कान, दो नासिका, दो आँखें व मुख-(कर्णाविमौ नासिके चक्षणी मुखम्)-रूप सात ऋषि **असृज्यन्त**=बनाये गये। इन सात ऋषियों से सब भूतों का ज्ञान प्राप्त करके—उन भूतों की रचना में रचयिता के महत्त्व का दर्शन करती हुई प्रजाएँ **सप्तभिः**=इन सात ऋषियों से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि **धाता**=इन पदार्थों के निर्माण के द्वारा हम सबका धारण करनेवाला वह प्रभु ही **अधिपतिः आसीत्**=हमारा अधिपति है। धारण करनेवाला होने से वह '**धाता**' नामवाला है।

भावार्थ—उस प्रभु का स्तवन हम 'प्रजापति, ब्रह्मणस्पति, भूतानांपति व धाता' इन नामों से करें।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—ईश्वरः। **छन्दः**—आर्षीत्रिष्टुप्[क], ब्राह्मीजगती[ख]। **स्वरः**—धैवतः[क], निषादः[ख]॥

नौ-ग्यारह-तेरह-पन्द्रह-सत्रह

[क]नवभिरस्तुवत पितरोऽसृज्यन्तादितिरधिपत्न्यासीदेकादशभिरस्तुवतऽ ऋतवोऽसृज्यन्तार्त्तवाऽअधिपतयऽआसंस्त्रयोदशभिरस्तुवत मासाऽअसृज्यन्त संवत्सरोऽधिपतिरासीत् पञ्चदशभिरस्तुवत क्षत्रमसृज्यतेन्द्रोऽधिपतिरासीत्सप्तदशभिरस्तुवत ग्राम्याः पशवोऽसृज्यन्त बृहस्पतिरधिपतिरासीत्॥२९॥

१. **पितरः असृज्यन्त**=(पितरः=नव जगद्रक्षका रश्मयः। नव वै प्राणाः सप्तशीर्षन्नवाञ्चौ द्वौ—श० ८।४।३।७) ज्ञानेन्द्रियाँ व कर्मेन्द्रियाँ रक्षा करने के प्रमुख साधन होने से यहाँ 'पितरः' (पा रक्षणे) कही गई हैं। यद्यपि ये पाँच-पाँच होकर दस हैं तथापि 'जिह्वा' रस ग्रहण करने से ज्ञानेन्द्रियों में तथा शब्द बोलने से कर्मेन्द्रियों में परिगणित होती है, अतः यह दोनों ओर एक ही है। एवं, ये मिलकर वस्तुतः नौ हैं। ये नौ इन्द्रियाँ ज्ञानेन्द्रियों के क्षेत्र में रश्मियाँ व किरणें हैं, कर्मेन्द्रियों की दृष्टि से ये रश्मियाँ लगामें हैं। ये सब रक्षक इन्द्रियाँ प्रभु से उत्पन्न की गई हैं। इनकी रचना के सौन्दर्य व अद्भुतता को देखकर **नवभिः**=इन नौ इन्द्रियों से प्रजाएँ **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि **अदितिः**=इन इन्द्रियों के निर्माण से हमारा खण्डन न होने देनेवाली वह जगज्जननी ही हमारी **अधिपत्नी आसीत्**=पालिका अधिष्ठात्री देवी है। खण्डन न होने देने के कारण ही वह 'अदिति' नामवाली है। २. **ऋतवः**=ऋतुएँ **असृज्यन्त**=उत्पन्न की गईं। एक-एक ऋतु जीव को शक्ति देनेवाली है। ऋतुचर्या के ठीक पालन से जीव के सब प्राण व सब इन्द्रियाँ बड़े शक्तिशाली बने रहते हैं। इनको शक्ति प्राप्त कराने के लिए उस-उस ऋतु में वनस्पतियों से समपोषयुक्त वे-वे ओषधियाँ प्राप्त होती हैं। इसी से ब्राह्मणों में हम पढ़ते हैं कि 'ऋतवः वै पृष्ठानि' (श० १।३।३।२।१) 'वीर्यं वै पृष्ठानि' (ता० ४।८।७) ऋतुएँ हमारी पृष्ठ (backbone) व वीर्यशक्ति हैं, अतः जीव **एकादशभिः**=(दश प्राणा आत्मैकादशः—श० २।४।३।८) दश प्राणों व आत्मा से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि किस प्रकार 'आर्तवाः'=(ऋतुषु भवा गुणाः—द०) उस-उस ऋतु के गुण—खूबियाँ **अधिपतयः आसन्**=हमारा सम्यक् पालन करनेवाले हैं। ३. **मासा असृज्यन्त**=महीने (वैशाख आदि बारह मास तथा १३वाँ मलमास, वेद के शब्दों में 'अहंसस्पति') उत्पन्न किये गये। 'मासो मानात्—नि० ४।२७' ये हमारे जीवन का निर्माण करते हैं। 'यव्या मासा—श० १।७।२।२६' ये हमारे शरीर के अवगुणों को दूर करनेवाले तथा गुणों का शरीर में उपचय करनेवाले हैं। यु=इस मिश्रण व अमिश्रण की क्रिया में ये उत्तम हैं। इस प्रकार ये हमारे जीवन को उत्तम बनाते हैं। हमें चाहिए कि

त्रयोदशभिः अस्तुवत=(दश प्राणाः प्रतिष्ठे एक आत्मा—श० ८।४।३।८) अपने दश प्राणों दो आधारभूत पाँव व आत्मा से उस प्रभु का स्तवन करें, जो इन तेरह मासों के द्वारा हमारे निवास को उत्तम बनाने के कारण 'संवत्सरः'=(उत्तम निवासक) संवत्सर नामवाला होता हुआ **अधिपतिः आसीत्**=अधिष्ठातृरूपेण रक्षक है। ये मास उस 'संवत्सर' के ही कर्मकर—रक्षणात्मक कर्म करनेवाले हैं। (मासाः संवत्सरस्य कर्मकराः—तै० ३।११।१०।३) ये उस प्रभु के कर्मकर हमारे जीवन को निरन्तर उन्नत करनेवाले हैं। उन्नत करने से ही 'उदाना मासाः—ता० ५।२०' इन्हें 'उदान' कहा गया है 'उत्कर्षेण आनयन्ति'। ४. ऋतुचर्या व मासचर्या के ठीक चलने के परिणामरूप ही अब **क्षत्रम्**=क्षत्रिय वर्ण की विशेषता का सम्पादक यह बल **असृज्यत**=उत्पन्न किया गया। सबल बनी हुई **पञ्चदशभिः**=(दश हस्त्या अंगुलयश्चत्वारि दोर्बाहवाणि यदूर्ध्वं नाभेस्तत् पंचदशम्—श० ८।४।३।१०) हाथ की दस अंगुलियों, दो हाथों, दो बाहुओं तथा नाभि से उपरले शरीरभाग से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करो कि **इन्द्रः**=सब ऐश्वर्य का स्वामी, सब शक्तियों का स्रोत (इन्द to be powerful) वह प्रभु **अधिपतिः आसीत्**=हमारा अधिष्ठातृरूपेण रक्षक है। हमारे सब अङ्गों को वह सबल बनाकर हमारा पालन कर रहा है। ५. बल व शक्ति को प्राप्त कराने के लिए ही जीवन की आवश्यक सामग्रियों को—दूध तथा वस्त्रादि के लिए ऊन आदि को—प्राप्त करानेवाले **ग्राम्याःपशवः**=ग्राम्य पशु (जो संख्या में सम्भवतः सत्रह जातियों के हैं) **असृज्यन्त**=उत्पन्न किये गये। इन पशुओं के महत्त्व को समझते हुए हम **सप्तदशभिः अस्तुवत**=(दश पाद्या अंगुलयश्चत्वार्यूर्वष्ठीवानि द्वे प्रतिष्ठे यदवाङ् नाभेस्तत् सप्तदशम्—श० ८।४।३।११) अपने पाँवों की दस अंगुलियों, दो घुटने, दो जाँघों, दो पाँव व सतरहवें नाभि के अधःदेश से उस प्रभु का स्तवन करें कि वह **बृहस्पतिः**=ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान का पति प्रभु वेदज्ञान के देने से हमारा **अधिपतिः आसीत्**=रक्षक है। वह प्रभु वेद द्वारा इन सब पशुओं से उपयुक्त सामग्री प्राप्त करने का उपदेश देता है और इस प्रकार इन्हें हमारे जीवन के साथ जोड़ देता है।

भावार्थ—हमारा रोम-रोम उस प्रभु का स्तवन 'अदिति, आर्तव, संवत्सर, इन्द्र व बृहस्पति' इन नामों से कर रहा हो।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—जगदीश्वरः। **छन्दः**—स्वराड्ब्राह्मीजगती[क], ब्राह्मीपङ्क्तिः[ख]। **स्वरः**—निषादः[क], पञ्चमः[ख]॥

उन्नीस-इक्कीस-तेईस-पच्चीस व सताईस

[क]नवदशभिरस्तुवत शूद्रार्यावसृज्येतामहोरात्रेऽअधिपत्नीऽआस्तामेकविꣳशत्यास्तुवतैकशफाः पशवोऽसृज्यन्त वरुणोऽधिपतिरासीत् त्रयोविꣳशत्यास्तुवत क्षुद्राः पशवोऽसृज्यन्त पूषाधिपतिरासीत् [ख]पञ्चविꣳशत्यास्तुवताऽऽरण्याः पशवोऽसृज्यन्त वायुरधिपतिरासीत् सप्तविꣳशत्यास्तुवत द्यावापृथिवी व्यैतां वसवो रुद्राऽआदित्याऽअनुव्यायँस्तऽएवाधिपतयऽआसन्॥ ३०॥

१. अब गत मन्त्र के ग्राम्य पशुओं से सीधे कार्य लेनेवाले **शूद्रार्यौ**=शूद्र व वैश्य **असृज्येताम्**=उत्पन्न किये गये। शूद्रों व वैश्यों को 'कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य' आदि कार्यों में इन ग्राम्य पशुओं के प्रयोग के लिए नियुक्त किया गया। इस सारी व्यवस्था को देखते हुए **नवदशभिः**=(दश हस्त्या अंगुलयः नव प्राणाः—श० ८।४।३।१२) मेरे हाथ की दस अंगुलियों व नौ प्राण—इन्द्रियों—से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें। 'शूद्र वर्ण' 'अहन्' है, 'न

जहाति' यह 'ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य' इन द्विजातियों की सेवा को नहीं छोड़ता—अनसूया से—दोषदर्शन के बिना यह इनकी सेवा में लगा रहता है। वैश्य 'रात्रि' है, रमयित्री—इसकी सम्पत्ति सभी को रमण करनेवाली होती है। यह अपनी सम्पत्ति से 'ब्राह्मण, क्षत्रिय व शूद्र' सभी का पोषण करता है, जैसे शरीर में उदर अन्य सब अङ्गों का अपने से उत्पादित रुधिर के द्वारा पोषण करता है। इन शूद्र व अर्यों को इन कार्यों में नियुक्त करनेवाला वह प्रभु **अहोरात्रे**=कभी हमारा साथ न छोड़नेवाला व उन-उन पदार्थों से हमारा रमण सिद्ध करनेवाला **अधिपत्नी आस्ताम्**=अधिष्ठातृरूपेण रक्षक है। उस 'अहोरात्र' नामवाले प्रभु ने दिन कार्य करने के लिए—अहन्—एक भी क्षण न खराब करने के लिए तथा रात्रि सब थकावट को दूर करके रमण के लिए बनायी है। इसी से उसका यह नाम हो गया है। २. **एकशफाः पशवः**=एक खुरवाले पशु (जो सम्भवतः संख्या में २१ जातियों के हैं) **असृज्यन्त**=उत्पन्न किये गये। मानव जीवन में अश्व व खच्चर की अत्यन्त उपयोगिता है, अतः **एकविंशत्या**=(दश हस्त्या अंगुलयो दश पाद्या आत्मैकविंशः—श० ८।५।३।१३) २१ अवयवों से—दस हाथ की अंगुलियों, दस पाँवों की अंगुलियों तथा २१ वें आत्मा से **अस्तुवत**=तुम प्रभु का स्तवन करो कि **वरुणः**=इन पशुओं की सहायता से हमारे कष्टों का निवारण करनेवाला प्रभु **अधिपतिः आसीत्**=अधिष्ठातृरूपेण हमारा रक्षक है। ३. **क्षुद्राः पशवः**=(आनकुलात् क्षुद्रजन्तवः) कृमि, कीट, नेवला आदि क्षुद्र पशु जो सम्भवतः २३ जातियों में विभक्त हैं, **असृज्यन्त**=बनाये गये। इनकी भी उस-उस उपयोगिता का ध्यान करते हुए **त्रयोविंशत्या**=(दश हस्त्या अंगुलयो दश पाद्या द्वे प्रतिष्ठे आत्मा त्रयोविंशः) हाथ-पाँवों की अंगुलियों, पाँवों व आत्मा से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करो कि **पूषा**=इन कृमियों के द्वारा भी हमारा पोषण करनेवाला वह प्रभु **अधिपतिः आसीत्**= अधिष्ठातृरूपेण हमारा रक्षक है। ४. **आरण्याः पशवः**=वन के पशु (जो सम्भवतः पच्चीस जातियों में विभक्त हैं) **असृज्यन्त**=उत्पन्न किये गये। इन आरण्य पशुओं की आवश्यकता को समझकर मनुष्य **पञ्चविंशत्या**=दस हाथ की अंगुलियों, दस पाँवों की अंगुलियों, शरीर के चारों अङ्गों (मस्तिष्क, उरस्, उदर व टाँग) तथा आत्मा से **अस्तुवत**=स्तुति करें कि **वायुः**=इन पशुओं के निर्माण द्वारा हमारी गति व गति द्वारा दोषों के हिंसन को बढ़ानेवाला (वा गतिगन्धनयोः) वायु नामक वह प्रभु **अधिपतिः आसीत्**=हमारा अधिष्ठातृरूपेण रक्षक था। ५. अब इन सब पशुओं के निर्माण के बाद **द्यावापृथिवी व्यैताम्**=द्यावापृथिवी विशिष्ट रूप से गतिवाले हुए, अर्थात् सारे ब्रह्माण्ड का काम ठीक से चलने लगा। पृथिवी के **वसवः**=वसु नामक देव अन्तरिक्ष के **रुद्राः**=रुद्र नामक देव तथा द्युलोक के **आदित्याः**= आदित्य नामक देव **अनुव्यायन्**=ठीक-ठीक कार्य करने लग गये, अर्थात् संसार की सब प्राकृतिक शक्तियाँ ठीक-ठीक कार्य करने में प्रवृत्त हो गईं। वसुओं ने हमारे निवास को उत्तम बनाया—रुद्रों ने हमारे प्राणों को पुष्ट किया और आदित्यों ने हमें दिव्य गुणों से पूर्ण कर दिया, अतः हम **सप्तविंशत्या**=दस हस्तांगुलियों, दस पादांगुलियों—चार अङ्गों (मस्तिष्क, उरस्, उदर व टाँग) दो पाँवों तथा आत्मा से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि **ते एव अधिपतयः आसन्**=वसुओं के द्वारा रक्षा करनेवाले आप ही 'वसु' हैं। प्राणशक्ति देनेवाले आप 'रुद्र' हो तथा दिव्य गुणों से हमें परिपूर्ण करनेवाले आप 'आदित्य' हो। **ते एव**=वे 'वसु, रुद्र और आदित्य' नामवाले ही आप हमारे अधिष्ठातृरूपेण रक्षक हो।

भावार्थ—हम 'एकशफ, क्षुद्र व आरण्य' पशुओं का भी उपयोग समझें और इनमें भी

प्रभु की महिमा को देखने का प्रयत्न करें। हमारा प्रत्येक अङ्ग प्रभु का स्तवन करनेवाला हो। हम उस प्रभु 'को 'अहोरात्र-वरुण-पूषा-वायु तथा वसु, रुद्र व आदित्य' नाम से स्मरण करें।

ऋषिः—विश्वदेवः। **देवता**—प्रजापतिः। **छन्दः**—निचृदतिधृतिः। **स्वरः**—षड्जः॥

उनत्तीस-इकतीस-तेतीस

नवविꣳशत्यास्तुवत वनस्पतयो ऽसृज्यन्त सोमो ऽधिपतिरासीदेकत्रिꣳशतास्तुवत प्रजाऽअसृज्यन्त यवाश्चायवाश्चाधिपतयऽआसꣳस्त्रयस्त्रिꣳशतास्तुवत भूतान्यशाम्यन् प्रजापतिः परमेष्ठ्यधिपतिरासीत्॥३१॥

१. प्रभु से **वनस्पतयः**=वनस्पतियाँ **असृज्यन्त**=बनाई गईं (जो सम्भवतः २९ प्रकार की थी—२९ जातियों में विभक्त थीं)। मानव जीवन में इन वनस्पतियों का स्थान स्पष्ट है। मनुष्य इन्हीं के उपयोग से अपने शरीर, मन व बुद्धि को पूर्ण स्वस्थ बनाता है। इन्हें वनस्पति नाम इसीलिए दिया गया कि ये मानवरूपी गृह (वन=a house) की रक्षा करती हैं। इस मानव-शरीर में वनस्=ज्ञानकिरणों की रक्षा करती हैं—बुद्धि को सात्त्विक बनानेवाली हैं। मनुष्य को चाहिए कि **नवविंशत्या**=हाथ-पैर की अंगुलियों व नौ प्राणों इन २९ से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि **सोमः**=हमारे जीवनों में इन वनस्पतियों के प्रयोग से सौम्यता का वर्धन करनेवाला वह 'सोम' नामक प्रभु **अधिपतिः आसीत्**=अधिष्ठातृरूपेण हमारा रक्षक है। २. अब इन वनस्पतियों के द्वारा **प्रजाः**=सब प्रकार के विकासों (प्र+जन्) का **असृज्यन्त**=सर्जन हुआ। मनुष्य को चाहिए कि **एकत्रिंशता** =बीस अंगुलियाँ, दस प्राण तथा इकतीसवें आत्मा से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करे कि **यवाः च**=हमारे साथ सब अच्छाइयों का मिश्रण करनेवाले 'यवाः' नामवाले वे प्रभु तथा **अयवाः च**=हमारी सब बुराइयों को दूर करनेवाले 'अयवाः' नामवाले प्रभु **अधिपतयः आसन्**=हमारे अधिष्ठातृरूपेण रक्षक हैं। ब्राह्मणग्रन्थों के अनुसार शुक्ल पूर्वपक्ष 'यव' हैं, कृष्ण अपरपक्ष 'अयव' हैं। वे प्रभु भी हमारे अन्दर शुक्लपक्ष की भाँति एक-एक गुणकला को भरनेवाले हैं तथा कृष्णपक्ष की भाँति एक-एक दोषकला को क्षीण करनेवाले हैं। ३. इस प्रकार सब विकासों के हो जाने पर—अथवा गुणपूर्ति व दोष-निराकरण हो जाने पर **भूतानि अशाम्यन्**=सब प्राणी पूर्णरूप से शान्ति का अनुभव करनेवाले हुए। हमें चाहिए कि हम **त्रयस्त्रिंशता**=सब अंगुलियों, प्राणों, दो आधारभूत पाँव तथा आत्मा से **अस्तुवत**=उस प्रभु का स्तवन करें कि वे प्रभु **प्रजापतिः**=हम सब प्रजाओं के रक्षक हैं, **परमेष्ठी**=सर्वोच्च स्थान में स्थित हैं—अपने भक्तों को भी सर्वोच्च स्थान में पहुँचानेवाले हैं, **अधिपतिः आसीत्**=वे ही हमारे अधिष्ठातृरूपेण रक्षक हैं।

भावार्थ—प्रभु विविध वनस्पतियों के उंत्पादन द्वारा हमारी सब शक्तियों के विकास का कारण बनते हैं और हमारे जीवनों में शान्ति उत्पन्न करते हैं। हम उस प्रभु का 'सोम, यव, अयव तथा प्रजापति, परमेष्ठी' नाम से स्तवन करें।

सूचना—गत मन्त्रों में यह भावना बारम्बार दोहराई गई है कि मेरा अङ्ग-अङ्ग उस प्रभु का स्मरण करनेवाला हो। हमारे अङ्गों से कोई ऐसा कार्य न हो जो प्रभु की सत्ता का इन्कार करनेवाला हो। हमारी वाणी मधुर शब्द बोले, कान भद्र शब्दों को ही सुनें, आँखें भद्रता से ही देखें।

॥ इति चतुर्दशोऽध्यायः सम्पूर्णः॥